निन्दा गर्हा आलोचनादि द्वारा पापों को नष्ट करने की संयुक्तिक विवेचना (सामायिक देशना के सन्दर्भ में)

डॉ. आशीष कुमार जैन, बम्हौरी
जैन और प्राकृत अध्ययन विभाग,
एकलव्य विश्वविद्यालय, दमोह (म.प्र.)

जैन वाङ्मय में ज्ञान के भंडार की श्रीवृद्धि करने वाले बहुश्रुत, बहुविख्यात अनेक आचार्य हुए हैं, उनमें वर्तमान में सर्वप्रथम पूज्य कुन्दकुन्द आचार्य जी हैं। इसके पश्चात् आचार्य श्री समन्तभद्र, आचार्य श्री विद्यानंद जी, आचार्य श्री जिनसेन जी, आचार्य श्री अकलंक स्वामी तथा पूज्यपाद जी आदि का अपना विशिष्ट स्थान है। हेतु जीवमात्र के हित हेतु उन्हें ग्रन्थों का सृजन इन आचार्यों ने स्वकल्याण तो किया ही पर मानवकल्याण हेतु, जीवमात्र के हित हेतु उन्होंने सरस्वती कोष में अमूल्य योगदान दिया तथा तथा ऐसे महनीय ग्रंथों का सृजन किया जो सदियों तक मानवकल्याण का पथ प्रशस्त करते रहेंगे। जैन साहित्य के भंडार को श्रीवृद्धि करने में परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज का महनीय अवदान है। प्राचीन आचार्य प्रणीत ग्रंथों पर देशना कृतियों के माध्यम से आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज को जो जैन संस्कृति, जैन साहित्य के लिए अवदान है वह स्तुत्य, अनुकरणीय और अभिवंदनीय है। उनकी प्रत्येक देशना कृति एक से बढकर एक हैं।

साधु जीवन का निरतिचार पालन करते हुए आपने एक अनेक जीवन्त कृतिओं के साथ अनेक साहित्यिक कृतियों का सृजन किया है। जैनागम के महानतम ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन पूर्व गम्भीर विषयों का सरलीकरण किया है। आपकी अध्यात्म रस में सरावोर कथन शैली जन–जन का मन मोहती है।

विभिन्न ग्रन्थों पर दी गई आपकी देशनाओं का ग्रन्थों के रुप में किया गया संकलन श्रमण–संस्कृति के लिए विशेष अवदान है। आपके द्वारा नियमदेशना, पुरुषार्थदेशना, समयदेशना, सद्देशना, अध्यात्मदेशना, तत्त्वदेशना, प्रेक्षादेशना, सर्वोदयीदेशना, स्वरुपदेशना, श्रावकधर्म देशना, सागर–अनगार धर्मदेशना, सामायिकदेशना, श्रमणधर्मदेशना, सुभाषित देशना, सोलहकारण भावना अनुशीलन, समाधि तंत्र अनुशीलन, इष्टोपदेश भाष्य, स्वरुप सम्बोधन परिशीलन आदि लगभग एक शतक का स्पर्श करने वाली रचनाएं श्रमण साहित्य के अवदान में विशेष महत्वपूर्ण हैं।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज ने भावना द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ पर अपने प्रवचन किये है जो सामायिक देशना के नाम से प्रकाशित है, जिसमें 7 नम्बर के श्लोक में निन्दा, गर्हा और आलोचना का विस्तृत वर्णन किया गया है।

निंदा व निंदन का लक्षण –

तथ्यस्य वातथ्यस्य वा दोषस्योद्भावनं प्रति इच्छा निंदा।

सर्वार्थसिद्धि / 6 / 25 / 339 / 12

सच्चे या झूठे दोषों को प्रगट करने की इच्छा निंदा है।

समयसार में लिखा है –

आत्मसाक्षिदोषप्रकटनं निंदा।

समयसार, तात्पर्यवृत्ति 306 / 388 / 12

आत्मसाक्षी पूर्वक अर्थात् स्वयं अपने किये दोषों को प्रगट करना या उन संबंधी पश्चात्ताप करना निंदा कहलाती है।

न्यायदर्शन भाष्य में लिखा है –

अनिष्टफलवादो निंदा।

न्यायदर्शन भाष्य 2 / 1 / 64 / 101

अनिष्ट फल के कहने को निंदा कहते हैं।

पंचाध्यायी में लिखा है –

निंदनं तत्र दुर्वाररागादौ दुष्टकर्मणि।

पश्चात्तापकरो बंधो ना ख्नो, पेक्ष्यो नाप्यु (प्य) पेक्षितः।473।

पंचाध्यायी, उत्तरार्ध 473

दुर्वार रागादिरूप दुष्ट कर्मों का पश्चात्ताप कारक बंध अनिष्ट होकर भी उपेक्षित नहीं होता। अर्थात् अपने दोषों का पश्चात्ताप करना निंदन है।

पर निंदा व आत्म प्रशंसा का निषेध –

अप्पपसंसं परिहरह सदा मा होह जसविणासयरा।

अप्पाणं थोवंतो तणलहुहो होदि हु जणम्मि।359।

ण य जायंति असंता गुणा विकत्थंतयस्स पुरिसस्स।
धंति हु महिलायंतो व पंडवो पंडवो चेव।362।
सगणे व परगणे वा परपरिवादं च मा करेज्जाह।
अच्चासादणविरदा होह सदा वज्जभीरू य।369।
दटठूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लज्जिओ सयं होइ।
रक्खइ य सयं दोसं व तयं जणजंपणभएण।372।

भगवती आराधना, गाथा नं. 359, 362, 369, 372

हे मुनि! तुम सदा के लिए अपनी प्रशंसा करना छोड़ दो। क्योंकि, अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने से तुम्हारा यश नष्ट हो जायेगा। जो मनुष्य अपनी प्रशंसा आप करता है वह जगत् में तृण के समान हलका होता है।359।

अपनी स्तुति आप करने से पुरुष के जो गुण नहीं हैं वे उत्पन्न नहीं हो सकते। जैसे कि कोई नपुंसक स्त्रीवत् हावभाव दिखाने पर भी स्त्री नहीं हो जाता नपुंसक ही रहता है।362।

हे मुनि! अपने गण में या परगण में तुम्हें अन्य मुनियों की निंदा करना कदापि योग्य नहीं है। पर की विराधना से विरक्त होकर सदा पापों से विरक्त होना चाहिए।369।

सत्पुरुष दूसरों का दोष देखकर उसको प्रगट नहीं करते हैं, प्रत्युत लोकनिंदा के भय से उनके दोषों को अपने दोषों के समान छिपाते हैं। दूसरों का दोष देखकर वे स्वयं लज्जित हो जाते हैं।372।

ण सहंति इयरदप्पं थुवंति अप्पाण अप्पमाहप्पं।
जिब्भणिमित्त कुणंति ते साहू सम्मउम्मुक्का।114।

रयणसार 114

जो साधु दूसरे के बड़प्पन को सहन नहीं कर सकता और स्वादिष्ट भोजन मिलने के निमित्त अपनी महिमा को स्वयं बखान करता है, उसे सम्यक्त्व रहित जानो।

कुरल काव्य में लिखा है –

शुभादशुभसंसक्तो नूनं निंद्यस्ततोऽधिकरू।
पुररू प्रियंवदरू किंतु पृष्ठे निंदापरायणरू।2।

सत्कर्म से विमुख हो जाना और कुकर्म करना निस्संदेह बुरा है। परंतु किसी के मुख पर तो हँसकर बोलना और पीठ–पीछे उसकी निंदा करना उससे भी बुरा है।

तत्त्वार्थसूत्र आचार्य उमास्वामी कहते है –

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचौर्गोत्रस्य 6/25

परनिंदा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का आच्छादन या ढँकना और असद्गुणों का प्रगट करना ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।

ग्र्हा

दृगुरुसाक्षिदोषप्रकटनं गर्हा।

(समयसार/तात्पर्यवृत्ति 306)

गुरु के समक्ष अपने दोष प्रगट करना गर्हा है।

पंचाध्यायी/उत्तरार्ध 474

गर्हणं तत्परित्यागरू पंचगुर्वात्मसाक्षिकरू।

निष्प्रमादतया नून शक्तितरू कर्महानये।474।

निश्चय से प्रमाद रहित होकर अपनी शक्ति के अनुसार उन कर्मों के क्षय के लिए जो पंचपरमेष्ठी के सामने आत्मसाक्षिपूर्वक उन रागादि भावों का त्याग है वह गर्हा कहलाती है।

आलोचना –

प्रतिक्षण उदित होनोवाली कषायों जनित जो अंतरंग व बाह्य दोष साधक की प्रतीति में आते हैं, जीवन शोधन के लिए उनका दूर करना अत्यंत आवश्यक है, इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आलोचना सबसे उत्तम मार्ग है। गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से अपने सर्व छोटे या बड़े दोषों को कह देना आलोचना कहलाता है। यह वीतरागी गुरु के समक्ष ही की जाती है, रागी व्यक्ति के समक्ष नहीं।

आलोचना सामान्य के लक्षण –

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडिय अणेयवित्थरविसेसं।

तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया।। 385

जो वर्तमान काल में शुभ–अशुभ कर्म रूप अनेक प्रकार ज्ञानावरणादि विस्तार रूप विशेषों को लिए हुए उदय आया है, उस दोष को जो ज्ञानी अनुभव करता है, वह आत्मा निश्चय से आलोचना स्वरूप है।

(समयसार / आत्मख्याति गाथा 385)

नियमसार, मूल या टीका गाथा 109

जो पस्सदि अप्पाणं समभावे संठवित्तु परिणामं।

आलोयणमिदि जाणह परमजिणंदस्स उवएसं ॥109॥

जो (जीव) परिणाम की समभाव में स्थाप कर (निज) आत्मा को देखता है, वह आलोचन है ऐसा परम जिनेंद्र का उपदेश जानना।

सर्वार्थसिद्धि में कहा है –

गुरु के समक्ष दश दोषों को टालकर अपने प्रमाद का निवेदन करना (व्यवहार) आलोचना है।

धवला पुस्तक 13 में कहा गया है –

अर्थात् आस्रव से रहित, श्रुत के रहस्य को जाननेवाले, वीतराग और रत्नत्रय में मेरु के समान स्थिर ऐसे गुरुओं के सामने अपने दोषों का निवेदन करना (व्यवहार) आलोचना नाम का प्रायश्चित है।

2. आलोचना के भेद

भगवती आराधना में

आलोचना के दो ही प्रकार हैं – एक ओघालोचना दूसरी पदविभागी आलोचना अर्थात् सामान्य आलोचना और विशेष आलोचना ऐसे इनके और भी दो नाम हैं। वचन सामान्य और विशेष, इन धर्मों का आश्रय लेकर प्रवृत्त होता है, अतः आलोचना के उपर्युक्त दो भेद हैं।

मूलाचार, आचारवृत्ति, गाथा 619 –

गुरु के समीप अपराध का कहना आलोचना है। वह दैवसिक, रात्रिक, ईर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक सांवत्सरिक, उत्तमार्थ – इस तरह सात प्रकार की है।

नियमसार, मूल या टीका गाथा 208

आलोचना का स्वरूप आलोचन, आलुंच्छन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि ऐसे चार प्रकार शास्त्र में कहा है।

भावना द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ में कहा है –

विनिन्दनालोचन गर्ह णैरहं, मनो–वचः काय–कषाय–निमित्तम्।
निहन्मि पापं भव दुःख कारणं, भिषग्विषं मन्त्र–गुणैरिवाखिलम्।।7।।

(भिषक्) वैद्य (मन्त्र–गुणैः) मन्त्र गुणों के द्वारा (अखिल विषं इव) जैसे समस्त विष को नष्ट कर देता है उसी प्रकार (अहं) मैं (विनिन्दमालोचन गर्हणैः) निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा (मनो–वचः काय–कषाय–निमित्तम्) मन, वचन, काय और कषाय के निमित्त से (भव–दुःखकारणं) संसार के दुःखों के कारणभूत (पापं) पाप को (निहन्मि) नष्ट करता हूँ।

सामायिक देशना में आचार्य श्री लिखते है कि –

स्वसाक्षीपूर्वक आलोचना 'निन्दा' है तथा धर्मात्माओं के बीच में जो अपनी आलोचना है, वह 'गर्हा' है। गुरुचरणों में जो निवेदन किया है, वह 'आलोचना' है। पर इतना ध्यान रखना कि हर व्यक्ति के सामने अपने दोषों को मत कहना। भूल तुमने की थी, वो भूल थी। पर महाभूल ये की कि दूसरे से अपनी भूल कही। भैया! गुरु तो गुरु रहता है। आज तुम्हारी पट रही है, तब तक लोग छुपा रहे हैं। जरा कुछ हुआ, तो ढिंढोरा पीटेंगे। जीवन में सबसे अपना दोष नहीं कहना। मात्र जाकर गुरु से आलोचना करना। ये काल अच्छा नहीं है और गुरु भी देख लेना।

प्रायश्चित्त देने का अधिकार आचार्य मात्र को है –

आचार्य में आठ गुण होते हैं। प्रायश्चित्त देने का अधिकार आचार्य मात्र को है। आजकल तो सभी प्रायश्चित्त देने लगे है। प्रायश्चित्तशास्त्र हैं, वे आज तक किसी को पढ़ने को नहीं मिल रहे। जब आचार्य अपने शिष्य को आचार्य बनाता है उसके पूर्व एकान्त में सबसे मांगलिक स्थान पर उनको गुप्त रूप में प्रायश्चित्त ग्रंथ पढ़ाता है। जिनका नाम रहस्य ग्रंथ है और मात्र गुरु शिष्य के बीच में रहते हैं वे ग्रंथ। उन ग्रंथों को सुनने का भी अधिकार नहीं है श्रावकों को। और श्रावक तो दूर हैं, सभी मुनिराजों को भी नहीं है। जो आचार्यत्व के नजदीक हैं, उनको ये आगमग्रंथ पढ़ाया जाता है प्रायश्चित्त शास्त्र। इसलिए जिस विद्या का जिसको ज्ञान नहीं है, जिसका अधिकार नहीं

है, अनधिकृत चेष्टा कोई न करे। **मुनि, आर्यिका, एलक, क्षुल्लक कोई भी प्रायश्चित्त देते हैं, ये अनधिकृत चेष्टा है।** उस ग्रंथ का भी तुमको ज्ञान नहीं है, न्यायालय का बोध नहीं है। भैया! आपने अध्ययन किया है, तब वकालत करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। अध्ययन के अभाव में तुम क्या वकालत करोगे? अध्ययन के बाद तुम्हारा अनुभव चलता है। लेकिन अनुभव तभी चलता है, जब अध्ययन होता है। ऐसे ही आचार्य पद के पूर्व आचार्यत्व का अध्ययन कराते हैं। आचार्य विरागसागरजी महाराज जब मुझे प्रायश्चित्तशास्त्र पढ़ा रहे थे, तब पूरा कक्ष पैक था, पर्दा पड़ा हुआ था, उस कक्ष में मैंने अध्ययन किया था। सामायिक देशना, पृ. 81, 82

शिष्य के 6 काल –

पुरुष कैसे दीक्षा लेते हैं कैसे शिक्षा ग्रहण करते हैं और कैसी व्यवस्था से रहते है – ये सब बाते काल भेद कर के समझनी चाहिए। शिष्य के 6 काल होते हैं। काल कहो, परिस्थिति कहो, जिस समय में जो परिस्थिति हो उस परिस्थिति को यहां काल कहा गया है।

'पंचास्तिकाय ग्रंथ' की गाथा क्रमांक 173 की हिन्दी व्याख्या में वर्णीजी ने विस्तृत व्याख्या की है –

1. दीक्षा का काल
2. शिक्षा काल
3. गणपोषणकाल
4. आत्मसंस्कार
5. सल्लेखना
6. उत्तमार्थकाल

जो परम शिष्य है, निकट भव्य है, तद्भव मोक्षगामी है, उसके जीवन में ये 6 परिस्थितियां आती हैं, किन्तु केवल यह पूर्ण नियम नहीं बनता कि क्रम से ये 6 काल सबके आते ही है तब ही मोक्ष होता है यह भी प्रायः नियम है।

आचार्य विशुद्धसागर जी महाराज ने सामायिक देशना ग्रन्थ में लिखा है कि संघ की व्यवस्था में कोई प्रश्न की आवश्यकता नहीं है। **'पंचास्तिकाय ग्रंथ'** उठाकर देखो। मुनियों के छह काल आये हैं। पहला काल दीक्षाकाल, दूसरा शिक्षाकाल। **जो अभिनव मुनि है,**

उसको मंचों की ओर नहीं दौड़ना चाहिये, ग्रंथों की ओर देखो। जो ग्रंथों को नहीं देख पाते हैं, वे जीवन में विह्वल हो जाते हैं। मंचों की ओर नहीं, ग्रंथों की ओर निहारिये शिक्षाकाल में। **शिक्षाकाल जब पूर्ण हो जाता है तब तीसरा काल आता है, गणपोषण–काल यानी वे संघ का संचालन करें और शिक्षा–दीक्षा दे सकते हैं,** परन्तु उलझ कर न रहे जायें। चौथाकाल आता हे आत्मसंस्कारकाल। अब धीरे–धीरे सब व्यवस्थाओं पर न्यूनता करते हुए आगे बढ़े। अब संन्यासकाल सल्लेखना की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। जैसे जितने अच्छे स्कूल खोले जाते हैं उनमें जुलाई के महीने में पूरे वर्ष का सब लेखा–जोखा तैयार हो जाता है कि क्या–क्या करना है साल भर। वैसे ही मेरा सोच है कि जीवन का पूरा लेखा–जोखा दीक्षा के दिन ही कर लेना चाहिए कि कितने वर्ष तक क्या करना है। इसके बाद मौन लेकर सल्लेखना की साधना करना है। बड़ा अपयश है, कलंक है कि एक आचार्य पचासों मुनियों की सल्लेखना करा दे और आचार्य की सल्लेखना न हो। ये तो बहुत बड़ा कलंक हो गया। इस आसन पर ही दृष्टि न रहे, आत्म आसन पर दृष्टि रहे। ये काठ का आसन मेरी समाधि का साधन नहीं है। लगानेवाले जानें, देखनेवाले जानें। आसन मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। आचार्य विरागसागरजी ने बिठाया है सिंहासन पर। मेरे लिए तो वे गुरुदेव हैं। मैं तो जो हूँ, सो हूँ।

आत्मसंस्कार–काल संन्यासकाल, अब अंतिम काल है उत्तमार्थ काल। 'छाछ त्याग पानी राखे, पानी तज संथारा' धन्य हो उस जीव के लिए बुद्धिपूर्वक वह जीव पानी का भी त्याग कर रहा हो। भगवान् ! उस अंतिम दिन की स्मृतियाँ आ रही हैं। देखो, आचार्य आदिसागर महाराज, जिनकी सल्लेखना कराने आचार्य शान्तिसागर महाराज गए थे। धन्य हों वे आचार्य शान्तिसागर महाराज, जिन्होंने छत्तीस दिन तक सल्लेखना की आराधना की हो और धन्य हों आचार्य विमलसागर और ज्ञानसागरजी, जिन्होंने अपने पद को अपने शिष्य को कैसे सौंप दिया हो। बेटा! अब पकड़ो इसको, ये हमारे समाधि का साधन नहीं है। लगता हे वे नयन कितने महान होंगे, जिन नयनों ने ये दृश्य देखा होगा? गुरु अपने शिष्य को पद सौंप कर स्वयं सल्लेखना की ओर बढ़े। इस धरती पर जितने आचार्य भगवन्त विचरण कर रहे हैं, मेरी यही भावना है कि भगवन्। जो आचार्य शान्तिसागर, शिवसागर, आदिसागर, ज्ञानसागर आदि ने किया है, बस, वर्तमान के आचार्यों की पीढ़ी वह ही करे। यही जैनदर्शन है। पद लेकर चले गए तो समाधि नहीं होती। किसकी हुई,

किसकी नहीं हुई, इन विकल्पों में जिओगे तो भी समाधि नहीं होगी। इसलिए जगत की चिंता छोड़ो।

आचार्य श्री सामायिक के विषय में कहते है कि –

सामायिक में पाठ चलता है। एक बार सामयिक पाठ हो गया तो किसी की निन्दा–आलोचना के परिणाम हो ही नहीं सकते। निज निन्दा करो। जो पर की निन्दा करता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता। जो स्वयं की निन्दा नहीं करता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता।

'मन, वच, काय से उपार्जित, संसार के दुःखों के कारणभूत पाप को मैं निन्दा, आलोचना, गर्हा के द्वारा नष्ट करता हूँ। जैसे वैद्य मंत्र के द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता है।

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी आत्मा की शुद्धि के मार्ग को **'प्रतिक्रमण'** कहते हैं। श्रमण–परंपरा में प्रतिक्रमण एक शाश्वत परंपरा है। जब किसी का किसी प्रकार से व्रतों में अतिक्रमण हो जाता है, तब उसका प्रतिक्रमण किया करते हैं। निज की आलोचना, निज की निन्दा। निज निन्दा को स्वीकार कर पाना और निज के दोषों को स्वीकार कर पाना विश्व का बहुत बड़ा चमत्कार है। गलती को गलती स्वीकार कर लेना, दोष मान लेना ज्ञानी। इससे बड़ा कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है। बाकी के प्रायश्चित्त बाद के विषय है। **सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो चित्त की शुद्धि है।** जिसकी चित्तशुद्धि करने की भावना होगी, वही प्रायश्चित्त लेने के परिणाय करेगा। जिसकी भव–संसति दीर्थ है जिसका संसार प्रचुर है, ऐसे जीव के परिणाम नहीं हो सकते। भैया! जिसका संसार दीर्घ है, उस जीव के परिणाम अपने दोषों को दोष स्वीकारने के होते ही नहीं है, निर्दोष होने के परिणाम ही नहीं होते हैं। पाप में ही मस्त है, पाप में ही आनन्दित है। आर्त्त–रौद्रध्यान जिसका स्वभाव वन चुका हो, ऐसे जीव के कभी प्रायश्चित्त लेने के परिणाम नहीं होते। ये तो उसी क्षण समझ में आता है। दोष होते ही अंतरंग में शोधन की भावना आ रही है तो समझना कि भवितव्यता पवित्र है। भूल से दोष हो सकता है। भूल से दोष हो जाये, कोई विकल्प मत करना, पर दोष हुआ है, ये भूल मत जाना।

आचार्यभगवान् क्या कह रहे हैं? जैसे विष को मंत्रवादी वैद्य निर्विष कर लेता है, ऐसे–ही हुए–दोष को निन्दा–आलोचना के माध्यम से मुमुक्षु जीव स्वयं निर्दोष कर

लेता है। ओलोचनाएँ पवित्र नीर हैं। बाहर के पानी से, दुनियाँ के लोग नदियों में स्नान करने जाते हैं। ये नदी के स्नान से शरीर का मैल घुल सकता है, परन्तु इन परिणामों को धोने का नीर निन्दा, गर्हा, आलोचना है। निन्दा कैसे हो? भैया 'हा दुट्ठ कयं' हे प्रभो! मैंने दुष्ट कार्य किया। सामायिक देशना 83

आचार्य श्री संसार के जीवों को सम्बोधित करते हुए कहते है कि भीतर जाकर देखो, हाय मैंने दुष्ट कृत्य किया। शिशु अवस्था से लेकर पूर्वापर तक हाय। मैंने दुष्ट किया। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पाँचों पापों में लवलीन होकर 'हाय दुट्ठ कयं,' कितना दुष्ट कार्य किया है। एक दोष से बचने के लिए, दोष से ही बचने के लिए नहीं, एक दोष की निन्दा से बचने के लिए कोटि–कोटि दोष और किये हैं। एक असत्य को छुपाने के लिए कोटि–कोटि असत्य का प्रयोग करना पड़ता है। एक असला को छुपाने के लिए असत्य का ही आलंबन लेना पड़ रहा है। पर ध्रुव सत्य है कि अग्नि को छुपाने के लिए रुई का लपेटना कार्यकारी नहीं होता। अग्नि को रुई से छिपायेगा तो अग्नि और धधक जायेगी। ऐसे ही दोष को दोष से छिपाना चाहता है तो निर्दोष परमात्मा कब बन पायेगा? 'हा दुट्ठ कयं' यह स्पष्ट स्वीकार किया जाए।

एक अज्ञानी ने काम–कषाय के आवेग में आकर व्यभिचार जैसा घोर पाप कर लिया। वो तो एक घोर पाप कर ही लिया, पर हे अज्ञानी! ये तूने क्या किया कि उस जीव के टुकड़े कराकर फेंक दिये। हे पापी। तूने पाप पर भी घोर पाप किया। एक पाप असंयम सेवन का किया है। यदि असंयम का सेवन कर ही लिया था, तो जीव को जन्म दे देते। हो सकता था कि ऐसा कोई महापुरुष जन्म ले लेता जो भविष्य में जिनशासन को जयवंत करता। परंतु क्या किया? आज एक जमाना चल रहा है कि दो बेटे दिख रहे हैं या एक बेटा दिख रहा है। इसका तात्पर्य ये नहीं समझना कि तूने एक ही बार पाप किया है। ये लोग अच्छे थे, भैया। बुरा लगे तो क्षमा कर देना, और लगे तो लग ही जाना चाहिए। वे पुराने बुजुर्ग अच्छे थे जिनके घर में दस–पाँच संतानें होती थीं। कम–से–कम पाप के बाद पाप तो नहीं किया और वे संतानें सनातन धर्म को आगे बढ़ा रही हैं। क्या तुमने ही देश का ठेका ले लिया है कम संतान का? यदि संतान नहीं बचेगी, तो सनातन धर्म कहाँ से चलेगा? पुनः घर–परिवार भरा–पूरा सुन्दर होता है। याँद आपके अन्दर धर्म है, तो बहुत अच्छा है कि असंयम का सेवन ही न करो, ब्रहम के साथ जीवन जियो और ब्रह्म के साथ जीवन नहीं जी पा रहे हैं तो ज्ञानी। जीव को जन्म दो।

पाप के बाद तो पुनः पाप मत करो। एक बार के असंयम में नौ कोटि जीवों का घात होता है। अब सोचो, हमने जीवन में क्या किया है? कम–से–कम जिनालय में अरहन्त देव के पादमूल में बैठ करके प्रतिक्रमण ही कर लिया करो कि स्वामी। मैंने दुष्ट कृत्य किया है।

ऐसी मैत्री भी मत करना जिससे मित्रता के राग में किसी बालक की हिंसा करना पड़ जाये, क्योंकि समयसार की रक्षा तभी होगी, जब चारित्र की रक्षा होगी और चारित्र को रक्षा नहीं है तो समयसार की रक्षा कहाँ होगी? कृत, कारित, अनुमोदना को समझो।

महिलाओं को सम्बोधित करते हुए आचार्य श्री गर्भपात के विषय में कहते है कि –

माँ। पता नहीं कितने भवों में बिलख जाओगी माँ बनने के लिए। यदि आपने किसी बहू–बेटी का गर्भपात में सहयोग भी किया है, अनुमोदना भी की है, प्रेरित भी किया है, तो विश्वास रखना, एक मनुष्य के बेटे के तुमने टुकड़े–टुकड़े करके फिंकवाया है, उस पाप का बंध कहाँ जायेगा? भैया। ध्यान रखना, किसी के घर में किसी ने आत्मघात कर लिया हो तो छह महीने का सूतक लगता है। ये कोई समझौते की बात नहीं है। पाप लगता है यानी लगता है। आजकल विद्वानों ने बदल दिया, मात्र माता–पिता को कह दिया, बाकी का सब गोल कर दिया भैया! ऐसा जिनवाणी में कहीं लिखा नहीं है। ये निजी सोच है। अध्ययन करें। **छह महीने का सूतक लगता है, और सहज मरण हो तो बारह दिन का सूतक लगता है, तेरहवें दिन शुद्धि होती है। ये विषय अलग है कि तुम तीन दिन में निपटा लेते हो, लेकिन सूतक तो बारहवें दिन तक ही रहेगा। शुद्धि तेरहवें दिन ही होगी। ये शुद्धि की परंपरा का नाश मत कर देना। आगमिक व्यवस्था को खंडित मत कर देना। भावों की शुद्धि तभी संभव है जब द्रव्यशुद्धि होगी। बिना द्रव्यशुद्धि के भावों की शुद्धि नहीं होती है। अभिनव परंपराएँ मत निकाल लेना। अग्नि की आयु तीन दिन की होने के कारण तुम तीन दिन की शुद्धि करते हो, लेकिन ध्यान रखना कि ग्रंथों में मरण का सूतक बारह दिन का है। भगवान का पूजन–विधान का समय तो तेरहवें दिन ही होगा, तीसरे दिन नहीं होगा।** बाकी शुद्धियाँ तीसरे दिन हो जायेंगी। जिसके यहाँ अपघात करके मरण हुआ है, उनकी छः माह बाद ही शुद्धि होगी।

ज्ञानी! थोड़ी मर्यादा रखो। मर्यादा बहुत आवश्यक है। समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर देगा तो पता नहीं क्या हो जायेगा। शुद्धि का पूरा ध्यान रखो। चार–पाँच दिन की जो माताओं की अशुद्धि है, उसका पूर्ण पालन होना चाहिए। सूतक पातक का पूर्ण पालन होना चाहिए। यदि इनका पालन नहीं करता है तो मूलाचार, तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि वह जीव यदि धर्मकार्य भी करता है तो कुभोगभूमि व भवनत्रिक का पात्र बनेगा, लेकिन उच्च जाति का देव नहीं बन सकता है। कभी लोगों को लगता है कि मुझे दान देना ही है, आहार कराना ही है, और सोले का ध्यान कुछ नहीं है, तो उसके लिए स्पष्ट लिखा है कि अशुद्ध द्रव्य को अशुद्ध अवस्था में यदि आपने पात्रदान आदि किया है तो पुण्य तो मिलेगा, लेकिन वह पुण्य तुम्हारे लिए भवनत्रिक में ले जायेगा। भवनवासी या व्यन्तर बनायेगा, स्वर्ग का देव नहीं बन पायेगा। ज्ञानी। ये तो ठीक है, बारह दिन का सूतक, छः महीने का सूतक। लेकिन जिस कुटुम्ब में जिस परिवार में **भ्रूण हत्या** हुई हो, गर्भपात हुआ, हो उस कुटुम्ब में सूतक कभी भी समाप्त ही नहीं होता। प्रायश्चित्त लो जाकरके। श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित्त ले लेना। लेकिन ऐसा भी मत करना कि लालों का घात कराके कहूँ कि प्रायश्चित्त ले लूँगा। कभी भूल से दोष हो गया हो तो प्रायश्वित ले लेना। भावनात्मक ग्रंथ का वाचन नहीं होगा तो भावशुद्धि नहीं बनेगी। उपदेशों में हजारों की भीड़ लग जाती है, ताली पीट–पीट करके लोग चले जाते हैं और फिर ठेले पर खड़े होकर चाट खाते हैं **'हा दुट्ठ कयं'**। नियोग मिला है, जितना मिला है उसका उपयोग कर लो। सामायिक देशना 85

एक आलू के अन्दर विराजे **'एगणिगोद सरीरे जीवा दव्वप्यमाणदो दिला। सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीद कालेण।।16।।** (गो. जी)' अतीतकाल में जितने सिद्ध हो चुके हैं, उससे अनन्तगुणे जीव एक आलू के अंशमात्र में है। ज्ञानियो। वे जीव सिद्धत्व शक्ति से सम्पन्न थे। उनमें भव्य भी हो सकते हैं, ऐसे जीवों को तुम मुख में डालकर पेट में ले गये और ज्ञानी यहाँ कह रहा है कि में शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ। ये शुद्ध–बुद्ध दशा कहने मात्र की नहीं है, करुणा भी तो आना चाहिए। द्रव्यानुयोग का अर्थ करुणा से रहित नहीं है।

जीवदया तो धर्म का मूल है। धन्य हो श्रमण संस्कृति, जयवन्त हो ऐसी बीतराग संस्कृति, जिसमें श्वास लेने को भी कहा कि संभल कर लेना। यदि मंद श्वास से काम चल रहा हो तो ज्यादा श्वासें मत खींचना, क्योंकि श्वास लेने में भी जीवों की हिंसा होती है। लेकिन उसके बिना तुम जी नहीं सकते हो इसलिए कम–से–कम श्वासें लो,

अधिक श्वासें तो मत खींचो। जितना ध्यान करेगा, श्वासें उतनी मंद होंगी। विश्वास रखना, निष्कषाय परिणाम जैसे–जैसे होते जायेंगे, आपकी श्वासें मंद होती जायेंगी। जंभाई, छींक में क्या है जैन परम्परा? जहाँ एक मुनिराज को जंभाई आये तो उसका भी प्रायश्चित्त लेते हैं, क्योंकि अँगड़ाई या जंभाई लेने में उष्ण श्वास बाहर निकला था और प्रमाद झलक रहा था। उसका भी प्रायश्चित्त होना था। छींक आ जाती है तो जो श्लेष्मा बाहर निकला, अन्दर के कीटाणु बाहर फिंके हैं। बाहर जहाँ पहुँचा, वहाँ सूक्ष्म जीवों की विराधना हुई है। भगवन्! मेरे शरीर के माध्यम से उत्पन्न हुए द्रव्य से इन जीवों का घात हुआ है। छींक आने पर जैनमुनि प्रायश्चित्त लेते हैं। जैनशासन में छींक का भी प्रायश्चित होता है, उस समय की करुणा कितनी विशाल होगी।

अरिहंत मुद्रा को, जैनमुनि को मात्र पिच्छी कमण्डल लिए ही मत देखा करो। ये तो आँखों का विषय है। उनकी अन्दर की बात तो सुनो, तब कितनी श्रद्धा उमड़ती है। हे भगवन् । छींक तो सहज क्रिया है, मैंने नहीं ली है। ज्ञानी! सहज क्रिया नहीं है ये, शरीर का विकार है और भैया। कीटाणु के कोई बल होता नहीं है। लघुशंका को जायें तो प्रायश्चित्त लें, दीर्घशंका को जायें तो प्रायश्चित्त लें। इनका तो कायोत्सर्ग करते–करते पूरा दिन निकलता है, शुभ क्रिया तो छूटती ही नहीं है सच्चे योगी की। सामायिक देशना – 86

श्रावकों को जनेऊ क्यों धारण करना चाहिए? आप लघुशंका गये, बले गये। जिसने यज्ञोपवीत धारण किया है, वह कान पर रखेगा। यानी शुद्धि के बाद कायोत्सर्ग करेगा, बिना कायोत्सर्ग के नहीं उतारेगा। और जो **व्रती मलमूत्र के विसर्जन/क्षेपण करते हुए भी मुख से बोल रहा है, वो ज्ञानावरणी कर्म के तीव्र बंध को प्राप्त होता है।** आप लोग सब अच्छे से सुनना, क्योंकि ये बातें कभी–कभी प्रकट होती हैं। जिनको स्मरण नहीं आ रहा है. बुद्धि काम नहीं कर रही है, क्षयोपशम काम नहीं कर रहा है, याद नहीं हो रहा है, उसका कारण यह है कि आपने जिनवाणी का अविनय किया है। अशुद्ध अवस्था में मुख से बोलना जिनवाणी का अविनय है। आप कह सकते हैं कि शास्त्र की बात थोड़े ही बोल रहा था।

भैया! कुछ भी बोलो, जो भी आप बोलेंगे वह स्वर–व्यंजन से रहित तो होगा नहीं। यदि गाली भी दे रहे हो तो ज्ञानी! वह भी शब्द से बनी हुई है। अच्छा भी तो बोल सकते हो। **'हा दुट्ठ कयं'** मैंने दुष्ट कार्य किया है। आप लोगों ने तो कभी दुष्ट कार्य किया ही

नहीं है ना? अब मत कहना किसी को कि तू दुष्ट है। हे ज्ञानी। एक लक्ष्य अपनी ओर ले जायें। मैंने जो दुष्ट कर्म किये, वही तो दुष्ट है। कौन दुष्ट है? ये सूत्र गौतमस्वामी कृत है। जरा अपने नेत्र बंद करके तो निहार लो कि मैंने अपने जीवन में क्या–क्या किया है? अंतर इतना है कि पूर्व के धर्म के संस्कार रहे, सो श्री जिनालय भी आते रहे, देव–शास्त्र–गुरु वंदना भी करते रहे और साथ में बंध भी करते रहे। ये तो परम पुण्य का उदय है कि कम–से–कम तेरे अंदर संस्कार तो रहे, सो यहाँ तक आ गये। जिनके ये भी संस्कार नहीं हैं, वे तो बेचारे निमग्न हैं पाप में। ये मत सोचना कि ये जैन नहीं है, उनको पाप–पुण्य नहीं लगता है, यह तुमको ही लगता हो। वे जानते नहीं हैं, इसलिए अज्ञानता में पापबंध को प्राप्त हो रहे हैं। जिस दिन उनको बोध हो जायेगा, तब उनको भी समझ में आ जायेगा श्हा दुट्ठ कयं।श इस भ्रम को भी निकाल देना, महाराज! हम तो जानते ही नहीं थे तो हमको क्यों पाप लगेगा? ज्ञानी। सुन ध्यान से–अचानक अचानक तुझे पता नहीं था, किसी के मकान में तू गया और उनकी नल के पाइप में कहीं छेद था, आपके ऊपर पानी गिर गया, तुझे मालूम ही नहीं चला। तूने कहा भी नहीं था कि तेरे ऊपर पानी गिरे। किसी ने कहा भी नहीं था कि मैं तुम्हारे ऊपर पानी डालता हैं। अज्ञानता में तेरे शरीर पर पानी आ जाये, ज्ञानी! शरीर गीला होगा कि नहीं, कपड़े गीले होंगे कि नहीं? हे मुमुक्षु ! पानी चाहे अज्ञानता में गिरे या जानकर गिरे, पाप चाहे अज्ञानता में करो ज्ञानी! आत्मा तो पाप से गीली होगी ही होगी। बंध को प्राप्त होगी। कुछ लोगों का ऐसा उल्य चिन्तन चलता है कि मैं तो नहीं जानता था, तो मुझे क्यों होगा? पाप–पुण्य की बातें वे लोग करें जो ज्ञानीलोग हैं। बातें तो ज्ञानी कर लेगा, लेकिन पाप–पुण्य न ज्ञानी को देखता है। न अज्ञानी को देखता है। वह कहता है कि मैं तीर्थंकर तक को भी नहीं छोड़ता हूँ, तुम कौन होते हो? आस्रव होता है। जिनता विवेक विपाक पर आता है, उतना विवेक आस्रव पर आ जाये, तो विपाक पर क्यों रोना पड़े? विपाक का अर्थ होता है फलदान, अनुभाग। आस्रवभाव, आत्मभाव। किन–किन माध्यम से आस्रव किया है? इतने जीव बैठे हैं, इनके बारे में अच्छा सोच लो तो तुम्हारा क्या चला जाएगा? कुछ भी नहीं जायेगा। पर विश्वास रखना, बहुत–कुछ चला जायेगा। जो–जो भगवान बने हैं, वे सबके बारे में अच्छा सोचते रहे, सो उनका बहुत–कुछ चला गया। एक सौ अड़तालीस कर्म चले गये। तीर्थंकरप्रकृति का बंध अच्छा सोचनेवाले को होता है। जगत् के प्राणिमात्र के प्रति करुणाबुद्धि रखते हैं, वात्सल्य का भाव रखते हैं,

सो उनके 148 कर्म नष्ट हो गये और वे सिद्ध बन गये। अच्छा सोचने में क्या जाता है? ज्ञानी! पाप चले जायेंगे पर, विश्वास रखो, पुण्य आयेगा। बुरा सोचनेवाले को क्या मिलता है? प्रातः के मांगलिक नगाड़े बजते हैं, मंदिरों में मांगलिक घंटियाँ बजती है, लोग भगवान् का अभिषेक करने पहुँचे होते हैं। उस समय में उनके गले जोर से चिल्लाने के कारण बाहर निकले मिलते हैं। क्या हो गया? कुछ भी तो नहीं हुआ, भैया। ये वही हैं जो प्रेम से, वात्सल्य से धर्मात्मा को गले नहीं लगा पाये। जो कानों से जिनवाणी नहीं सुन पाये, आज इनके कान पकड़कर कटघरे में खड़ा कर दिया गया है।

हाय भगवन् ! ये क्या? जितने काँटेदार वृक्ष हैं, मालूम ये कौन हैं? जो तीर्थ भूमि में पहुँचे, निर्वाणभूमि में पहुँचे, धर्मक्षेत्र में पहुँचे, निर्ग्रन्थ मुद्राओं को भी धारण कर लिए, लेकिन जिन्होंने कानों को काटना नहीं छोड़ा, दूसरे की निन्दा करना नहीं छोड़ा था, ये वे ही काटे हैं। ज्ञानी! जो पहले कोई मुख से काटता था, कोई कानों में काटता था, आज उसके सर्वाङ्ग में काँटे–ही–काँटे हैं। वे बबूल के वृक्ष बने खड़े हुए हैं।श प्रत्यक्षं कि प्रमाणम् ?श देख लो, ये काँटों का वृक्ष है। ये जो जूही है, चम्पा चमेली है, केतकी है, ये सामान्य जीव नहीं है। ये स्वर्ग से च्युत हुए जीव हैं। स्वर्ग के देव एकेन्द्रिय बने हैं। रौद्रध्यान से, आर्त्तध्यान से 'तह ते चय थावर तन धरे।' वे एकेन्द्रिय बने हैं। वे आज पुष्प के रूप में खिले हैं, क्योंकि इन्होंने जो निदानबंध कर लिया कि हे भगवन्! मैं मध्यलोक में जाऊँगा, तो नौ महीने गर्भ में कैसे रहूँगा? उन्हीं के फल से पुष्प बन गये। माताओ! इस पुण्यभूमि में बैठकर किसी के बारे में अशुभ मत सोचो।

एक बात पूहूँ? जिस परिसर में आप बैठे हैं, माना कि आज ही निर्णय हो जाए कि इस भूमि पर मंदिर का शिलान्यास होनेवाला है। तू जरा भी धर्मात्मा होगा और मुझे मलविसर्जन की जरा भी पीड़ा होगी, तो इस मुहूर्त में तू मलविसर्जन यहाँ नहीं करेगा। इतना पापी तो नहीं है ये जीव, जिसे मालूम चल जाये कि यहाँ मंदिर बननेवाला है, वहाँ मलविसर्जन करें। नहीं करेगा। भैया ! जिस भूमि पर जिनमंदिर बननेवाला हो, उस भूखंड को भी हम पवित्र मानकर मलविसर्जन नहीं करते। हे माँ। जिस भूमि पर जिनबिम्ब की रचना का प्रस्ताव आ जाये और आपको मालूम चल जाये, तो उस भूमि पर तुम कचरा नहीं फेंकती हो, मलविसर्जन नहीं करती हो। तो आज मैं आपसे कहता हूँ, कि ये मेरा भगवान् आत्मा प्रस्तावित श्री जिनेन्द्र भगवान है। इस प्रस्तावित निज अंतरंग जिनालय में ज्ञानी! किसी प्रकार का पापपक मत रखना। मालूम चल गया ये प्रस्तावित

भूमि है, हे ब्रह्मचारियो। ये तैरा प्रस्तावित भैष है, तेरी आत्मा भगवान बननेवाली है। जब ज्ञानी! प्रस्तावित भूमि पर मल का विसर्जन नहीं हो सकता है, तब प्रस्तावित जिनदेव पर पाप का विसर्जन कैसा? भैया। कभी तुझे पाप करे का विकल्प आये तो प्रस्तावित जिनालय में नहीं करना, बाकी तू जाने। अब कहाँ करने जायेगा? मिथ्यात्व के मंद उदय आते ही, सम्यकत्व प्रकृति के प्रकट होते ही श्ज्ञानीश संज्ञा प्रारंभ हो चुकी है। आचार्य ब्रहमदेव सूरि ने श्वृहद् द्रव्यसंग्रहश की टीका में स्पष्ट लिखा है कि सम्यग्दृष्टि जीव एकदेश जिन है– चतुर्थ गुणस्थानवर्ती। भैया। इन जिनों को देखकर मुस्करा देना, इन जिनों की अवहेलना नहीं करना। प्रतिमाधारी तो बहुत ऊँची बात है, जिसको देव–शास्त्र–गुरु पर श्रद्धान आ चुका है, वह देशजिन हो चुका है क्योंकि इसने मिथ्यात्व को जीत लिया है। मंदिर की भूमि में नींव खुद चुकी है, सम्यक्त्व प्रकट हो गया है और प्रतिमा धारण कर ली, एक मंजिल खड़ी हो चुकी है। फिर तो ग्यारह प्रतिमा में...। और फिर निर्ग्रन्ध अवस्था धारण कर ली, तब तो मंदिर में कलश चढ़ गया और जिसने सल्लेखना मरण कर लिया, उसने तो ध्वजा ही चढ़ा दी। ध्वजा फहरा गई उसके मंदिर पर। इसलिए भैया! जितने जीव यहाँ विराजते हैं, वे सव प्रस्तावित जिनदेव हैं। इनके प्रति अशुद्ध भाव मत लाना। कभी भी निन्दा/अवर्णवाद नहीं करना। उनके अगले भाव पवित्र हैं। सामायिक देशना – 88, 89

भैया ! आज तो एक काम करो, तुम रागी तो हो ही, कोई तिलक वगैरह का त्याग तो है नहीं। भैया। केशर या चंदन का घोल बनाकर पकड़ा दो और सभी के माथे पर लिखवा दो, प्रस्तावित अरहन्त देव। व्यवहार में आप श्प्रस्तावित कॉलेजश ऐसा क्यों लगा देते हो? जिससे कोई दूसरे उपयोग में न लें, कोई कब्जा न कर ले। ऐसे ही मैं क्यों लिखवा रहा हूँ श्प्रस्तावित जिनदेवश? जिससे फिर कोई जीव दूसरे काम में न ले–ले इसको। कोई शादी न करा ले, कोई व्यभिचार न कर ले, कोई खोटे काम न कर ले। ये प्रस्तावित जिनदेव हैं। युवा व्यक्तियों के चेहरे पर भी लिख देना भैया! लोग पढ़ेंगे तो कहेंगे कि इनसे कुछ मत बोलो, भैया। ये प्रस्तावित जिनदेन हैं। ऐसे पवित्र परिणाम जिसके हो जायेंगे, भैया! भगवत्ता का आनन्द जब आयेगा, तब आयेगा, लेकिन ध्रुव सत्य है कि तेरे घर में ही भगवत्ता की ध्वनि प्रकट हो जायेगी। ये अद्भुत पवित्र परिणाम है। जिस संस्कृति में एक भटकते तिर्यंच को भी प्रस्तावित जिनदेव कहा जाता है, उस संस्कृ ति में बन गये इन देवों को जिनदेव न कहा जाये तो वे देखनेवाली आँखें ही खोटी हैं।

हा दुट्ठ कयं, हा दुद्ध चितयं। जितना पाप कर नहीं पाता, उतना पाप सोच लेता है। सही बताना, जीवन में पाप कितना किया है और सोचा कितना है? अल्प दिनों के अन्दर, क्षण मात्र में कषाय बदल जाती है, परिणाम बदल जाते हैं। लेकिन उद्रेक में आपने हाय। कितना किसके किसके बारे में बुरा सोच लिया? जरा–सा इच्छित काम नहीं हुआ तो पता नहीं कितना कितना सोच लेते हैं। मेरे से मत कहो, अपने से कहो श्हा दुट्ठ चिंतयंश– हास मैंने दुष्ट चिंतन किया है।

मालूम, मुनि क्यों बनना चाहिए? न घर छोड़ने के लिए मुनि बनना पड़ता है, न परिवार छोड़ने के लिए मुनि बनना पड़ता है। न किसी से मिलने–जुलने के लिए मुनि बनना पड़ता है, तो मुनि बनना क्यों पड़ता है? दुनियाँ में सबसे बड़ा तनाव भोजन है। एक चींटी को देखो, प्रातः वह पाताल के छेद से निकलती है और शाम को रात्रि तक घूमती रहती है, कितना–सा पेट होता उसका। मात्र खाने खाने के लिए उसका काम चलता रहता है। देश का कोई विशिष्ट वैज्ञानिक है वह यदि अपने भोज की व्यवस्था करे तो कभी कोई खोज नहीं कर पायेगा। जितने बड़े–बड़े विद्वान हुए उच्च कोटि के, चोटी के, ये सब गरीब रहे हैं। यदि पैसा कमाने जायेंगे तो विद्या को समय नहीं है और विद्या को समय देंगे तो पैसे को समय नहीं है। उनको विद्या भा गई। लेकिन सुख जो है, न पैसे में है न विद्या में है। ज्ञानी। सुख तो जिसको जिसमें संतुष्टि है, उसमें है। जिसको पैसे में संतुष्टि है, उसको पैसे में सुख दिखता है। जिसको विद्या में संतुष्टि है, उसको विद्या में सुख दिखता है। वे गरीब होकर भी मुस्कराते रहे, क्योंकि उनको विद्या में संतुष्टि है। मुनि लोग क्यों मुस्कराते हैं, क्योंकि छोड़ने के बाद इनको इसमें ही संतुष्टि महसूस हो रही है, इसलिए आनंद है। और संतुष्टि नहीं महसूस होगी तो विश्वास रखना, इन मुनियों से बड़ा दुःखिया इस जगत में कोई नहीं मिलेगा। यदि संतुष्टि नहीं है तो आपको तुष्टि होनी चाहिए। किसी भी देश का वैज्ञानिक होगा, रिसर्च कर रहा, खोज कर रहा, अन्वेषण कर रहा है तो शासन सामान्य लोगो की अपेक्षा वैज्ञानिक को अधिक वेतन देता है। भारत की भूमि पर जितने ऋषिगण विचरण कर रहे हं, ये हमारे धरती के देवता हैं।

पूरे देश की आँखें अपने वैज्ञानिकों पर लगी हैं। गद्दी पर बैठा शासक, उसके बैठने से देश का उत्थान नहीं है उत्थान तो ध्यानियों से वैज्ञानिकों से, खोजियों से है, इंजीनियरों–डॉक्टरों से है। वह अकेला गद्दी में बैठकर क्या करेगा? एक वैज्ञानिक के लिए

खोज कितनी? जो जितनी गहरी खोज करता है, उतना अधिक वेतन देना पड़ता है। क्यों? यदि इसका मन भोजन और पैसे में चला गया, तो इसकी खोज में न्यूनता आ जावेगी, काम को अच्छे से नहीं कर पायेगा। जब बाहर भौतिक खोज के लिए शासन ने व्यवस्था की है, तुम्हें भोजन की भी चिन्ता नहीं है, तो हे वीतराग वैज्ञानिक ! तुम आत्मदेव की खोज करो। तुमको भोजन की भी चिन्ता नहीं है। तुम अंजलि लगाकर निकल जाना, आहार कराने वाले मिल जायेगे। यदि शासन भरपूर वेतन दे, तब भी वैज्ञानिक खोज न करे, तब उसको धिक्कार कहा जायेगा। जिनशासन में किसी भी त्यागी को ये नहीं कहा जाता कि तुम कमाओ तब तुम्हें भोजन मिलेगा। व्रती क्षुल्लक बनते हैं, दशम प्रतिमा लेते ही उसके आहार के लिए समाज पुकारने लगता है। दो तीन प्रतिमाधारी को भी सम्मान से अपने घर में भोजन कराती है।श आओ भैयाजी। मेरे घर चलो।श फिर भी ये वीतरागी जैसे वैज्ञानिकों की ड्रेस होती है। प्रयोगशालाओं के आसपास जनसामान्य को जाना वर्जित है। विशेष ड्रेस में बैठे हैं। अब ज्ञानियों! ये निर्ग्रन्थ योगी जो वीतरागी वैज्ञानिक हैं, इनकी प्रयोगशाला में स्त्रियों का स्थान नहीं होना चाहिए, नपुंसकों का स्थान नहीं होना चाहिए, तिर्यंचों का आना–जाना नहीं होना चाहिए, कोई बच्चे–बूढ़े नहीं आना चाहिए। यहाँ पर इनको एकान्त में प्रयोग करने दीजिये। ये भगवती रसायन चौतन्य धातु की खोज कर रहे हैं। उस खोज में जब ये निष्णात हो जायेंगे, तब स्नातक बनकर अरहन्त बन जायेंगे। सामायिक देशना 90

तीर्थंकर भगवान् के एक हजारआठ नाम होते हैं। दृष्टि को विशाल बनाइये। वैज्ञानिक की बातें कर रहे हो और संकुचित विचारधारा? मुख को बांधना नहीं है, खोलकर रखना है। जयवन्त हों आचार्य विरागसागर, जयवन्त हों आचार्य विद्यासागर, विमलसागर, महावीरकीर्ति। इस भारत की भूमि पर जितने योगी हैं, कुन्दकुन्द–जैसे महायोगी जयवन्त हों। किसान जब गाय से दूध निकालता है तो दो में से एक काम करता है। या तो बछड़े को सामने खड़ा करेगा या फिर उसे खाना डालेगा। जैसे–जैसे वह खाती जाती है, वैसे वह दूध निकालता जाता है, क्योंकि उसके भाव बदले हुए हैं, प्रीति बनी हुई है। प्रीति से दूध निकलता है। और बछड़ा सामने होता है तो प्रीति बढ़ती है व दूध निकलता है। ज्ञानी! **तत्त्व का लाभ तभी होता है, जब मन की विषमताएँ हटकर गाय–जैसे शुद्ध परिणाम होते हैं, तब वात्सल्य का क्षीर झरना प्रारंभ होता है, तब तत्त्व का बोध होता है।** यदि गाय को रुष्ट कर दोगे, तो फिर दूध न निकाल

पाओगे। ऐसे ही आपने परिणामों को रुष्ट कर दिया या संतुष्ट कर लिया कि अब मैं जय बोलूँ कि नहीं बोलूँ, ज्ञानी। उनको तो आनन्द आ ही नहीं सकता है।

मैं तीन कम नौ कोटि मुनियों का भक्त हूँ, क्योंकि तीन कम नौ कोटि मुनिराज द्रब्यलिंग सहित भावलिङ्गी हैं। वे वीतरागी श्रमण बन्दनीय है, पूजनीय है। **'वन्दे तद्गुण लब्धये।** सामायिक देशना – 92

आचार्य श्री सामायिक देशना में कहते है कि –

कभी–कभी मन कहता है कि कुछ मत कहो, सिर्फ एक दूसरे को देखो, प्रस्तावित भूमि–खण्ड को देखो और सोचो कि कैसे–कैसे बनेगा? **'हा दुट्ठ भासियं'** मैंने दुष्ट भाषण किया है। भैया। देखो, जनक जननी होंगे तो बोलना तो पड़ता है, लेकिन ऐसा बोलना कि मिश्री–जैसा घुले। ऐसा मत बोलना कि जहर बन घुले। वाणी हमारी बाण न बने, वाणी हमारी बाँस की लाठी न बने, वाणी हमारी वीणा बनकर गुंजायमान हो। उसी बाँस से लाठी बनाते हो, उसी बाँस से बाँसुरी बनती है ना? वाणी में तुम्हारी बाँसुरी बनकर संगीत के स्वर निकले, वाणी तुम्हारी लाठी बनकर किसी की पीठ न तोड़े। वाणी को बाँस की लाठी मत बनाना, वाणी को ज्ञानी। बाँस की बाँसुरी बनाना। **'हा दुट्ठ भासियं'** '**अन्तोअन्तो'** मैं अंतरंग–अंतरंग में झुलस रहा हूँ पश्चात्ताप से। हे स्वामी! मेरे दुष्कृत मिथ्या हो। **'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।'** हे प्रभो! मैंने दुष्ट बोला हो, मैंने दुष्ट किया हो, मैंने दुष्ट भाषण किया हो, वे मेरे सारे दोष मिथ्या हों। तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चैत्यभक्ति में भगवान् गौतम स्वामी ने भगवान् की वाणी को 'महानद' की उपमा दी। 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' क्यों? मैंने दुष्ट किया हो, दुष्ट बोला हो, दुष्ट चिंतन किया हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। सामायिक देशना 93

प्रतिक्रमण के विषय में आचार्य श्री ने वहुत ही सुन्दर उदाहरण देकर सम्बोधन दिया है –

भैया! अपन लोग घर में नाली भी तो बनाते हैं। कितनी सुन्दर होती है जब बनकर तैयार होती है और फिर सप्ताह में एक बार साफ भी करता है। जब नाली बनाई जाती है, तब कोई गंदगी नहीं होती है। बनने के उपरांत गंदगी हो ही जाती है, तो साफ भी तो करना करना पड़ती है। कोई भी जीव व्रत धारण करता है, तब कोई अशुद्धि नहीं होती है। लेकिन फिर भी दीष लग ही जाते हैं। यदि नाली को साफ नहीं करेगा तो घर कीचड़ से भर जाएगा। ऐसे ही यदि प्रतिक्रमण नहीं करेगा तो तेरा चारित्र

का घर कीचड़ से भर जाएगा। इसलिए प्रत्येक श्रावक के, योगी के तीन बार प्रतिक्रमण में कमी नहीं आनी चाहिए। यदि प्रमाद है, जागृति नहीं है, तो पल–पल में दोष है। श्रुतानुष्ठान में सबसे बड़ा है, महापाप है, तो वह प्रमाद है और प्रमाद सबसे बड़ी हिंसा है।

हे जिनेन्द्र भगवान्। मैंने उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का प्रमाद से जो अतिक्रमणतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

निन्दा गर्हा आलोचनादि द्वारा पापों को नष्ट करने की संयुक्तिक विवेचना (सामायिक देशना के सन्दर्भ में)

डॉ. आशीष कुमार जैन, बम्हौरी
जैन और प्राकृत अध्ययन विभाग,
एकलव्य विश्वविद्यालय, दमोह (म.प्र.)

जैन वाङ्मय में ज्ञान के भंडार की श्रीवृद्धि करने वाले बहुश्रुत, बहुविख्यात अनेक आचार्य हुए हैं, उनमें वर्तमान में सर्वप्रथम पूज्य कुन्दकुन्द आचार्य जी हैं। इसके पश्चात् आचार्य श्री समन्तभद्र, आचार्य श्री विद्यानंद जी, आचार्य श्री जिनसेन जी, आचार्य श्री अकलंक स्वामी तथा पूज्यपाद जी आदि का अपना विशिष्ट स्थान है। हेतु जीवमात्र के हित हेतु उन्हें ग्रन्थों का सृजन इन आचार्यों ने स्वकल्याण तो किया ही पर मानवकल्याण हेतु, जीवमात्र के हित हेतु उन्होंने सरस्वती कोष में अमूल्य योगदान दिया तथा तथा ऐसे महनीय ग्रंथों का सृजन किया जो सदियों तक मानवकल्याण का पथ प्रशस्त करते रहेंगे। जैन साहित्य के भंडार को श्रीवृद्धि करने में परम पूज्य आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज का महनीय अवदान है। प्राचीन आचार्य प्रणीत ग्रंथों पर देशना कृतियों के माध्यम से आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज को जो जैन संस्कृति, जैन साहित्य के लिए अवदान है वह स्तुत्य, अनुकरणीय और अभिवंदनीय है। उनकी प्रत्येक देशना कृति एक से बढकर एक हैं।

साधु जीवन का निरतिचार पालन करते हुए आपने एक अनेक जीवन्त कृतिओं के साथ अनेक साहित्यिक कृतियों का सृजन किया है। जैनागम के महानतम ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन पूर्व गम्भीर विषयों का सरलीकरण किया है। आपकी अध्यात्म रस में सरावोर कथन शैली जन–जन का मन मोहती है।

विभिन्न ग्रन्थों पर दी गई आपकी देशनाओं का ग्रन्थों के रुप में किया गया संकलन श्रमण–संस्कृति के लिए विशेष अवदान है। आपके द्वारा नियमदेशना, पुरुषार्थदेशना, समयदेशना, सद्देशना, अध्यात्मदेशना, तत्त्वदेशना, प्रेक्षादेशना, सर्वोदयीदेशना, स्वरुपदेशना, श्रावकधर्म देशना, सागर–अनगार धर्मदेशना, सामायिकदेशना, श्रमणधर्मदेशना, सुभाषित देशना, सोलहकारण भावना अनुशीलन, समाधि तंत्र अनुशीलन, इष्टोपदेश भाष्य, स्वरुप सम्बोधन परिशीलन आदि लगभग एक शतक का स्पर्श करने वाली रचनाएं श्रमण साहित्य के अवदान में विशेष महत्वपूर्ण हैं।

आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज ने भावना द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ पर अपने प्रवचन किये है जो सामायिक देशना के नाम से प्रकाशित है, जिसमें 7 नम्बर के श्लोक में निन्दा, गर्हा और आलोचना का विस्तृत वर्णन किया गया है।

निंदा व निंदन का लक्षण –

तथ्यस्य वातथ्यस्य वा दोषस्योद्भावनं प्रति इच्छा निंदा।

सर्वार्थसिद्धि / 6 / 25 / 339 / 12

सच्चे या झूठे दोषों को प्रगट करने की इच्छा निंदा है।

समयसार में लिखा है –

आत्मसाक्षिदोषप्रकटनं निंदा।

समयसार, तात्पर्यवृत्ति 306 / 388 / 12

आत्मसाक्षी पूर्वक अर्थात् स्वयं अपने किये दोषों को प्रगट करना या उन संबंधी पश्चात्ताप करना निंदा कहलाती है।

न्यायदर्शन भाष्य में लिखा है –

अनिष्टफलवादो निंदा।

न्यायदर्शन भाष्य 2 / 1 / 64 / 101

अनिष्ट फल के कहने को निंदा कहते हैं।

पंचाध्यायी में लिखा है –

निंदनं तत्र दुर्वाररागादौ दुष्टकर्मणि।

पश्चात्तापकरो बंधो ना ख्नो, पेक्ष्यो नाप्यु (प्य) पेक्षितः।473।

पंचाध्यायी, उत्तरार्ध 473

दुर्वार रागादिरूप दुष्ट कर्मों का पश्चात्ताप कारक बंध अनिष्ट होकर भी उपेक्षित नहीं होता। अर्थात् अपने दोषों का पश्चात्ताप करना निंदन है।

पर निंदा व आत्म प्रशंसा का निषेध –

अप्पपसंसं परिहरह सदा मा होह जसविणासयरा।

अप्पाणं थोवंतो तणलहुहो होदि हु जणम्मि।359।

ण य जायंति असंता गुणा विकत्थंतयस्स पुरिसस्स।
धंति हु महिलायंतो व पंडवो पंडवो चेव।362।
सगणे व परगणे वा परपरिवादं च मा करेज्जाह।
अच्चासादणविरदा होह सदा वज्जभीरू य।369।
दटठूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लज्जिओ सयं होइ।
रक्खइ य सयं दोसं व तयं जणजंपणभएण।372।

भगवती आराधना, गाथा नं. 359, 362, 369, 372

हे मुनि! तुम सदा के लिए अपनी प्रशंसा करना छोड़ दो। क्योंकि, अपने मुख से अपनी प्रशंसा करने से तुम्हारा यश नष्ट हो जायेगा। जो मनुष्य अपनी प्रशंसा आप करता है वह जगत् में तृण के समान हलका होता है।359।

अपनी स्तुति आप करने से पुरुष के जो गुण नहीं हैं वे उत्पन्न नहीं हो सकते। जैसे कि कोई नपुंसक स्त्रीवत् हावभाव दिखाने पर भी स्त्री नहीं हो जाता नपुंसक ही रहता है।362।

हे मुनि! अपने गण में या परगण में तुम्हें अन्य मुनियों की निंदा करना कदापि योग्य नहीं है। पर की विराधना से विरक्त होकर सदा पापों से विरक्त होना चाहिए।369।

सत्पुरुष दूसरों का दोष देखकर उसको प्रगट नहीं करते हैं, प्रत्युत लोकनिंदा के भय से उनके दोषों को अपने दोषों के समान छिपाते हैं। दूसरों का दोष देखकर वे स्वयं लज्जित हो जाते हैं।372।

ण सहंति इयरदप्पं थुवंति अप्पाण अप्पमाहप्पं।
जिब्भणिमित्त कुणंति ते साहू सम्मउम्मुक्का।114।

रयणसार 114

जो साधु दूसरे के बड़प्पन को सहन नहीं कर सकता और स्वादिष्ट भोजन मिलने के निमित्त अपनी महिमा को स्वयं बखान करता है, उसे सम्यक्त्व रहित जानो।

कुरल काव्य में लिखा है –

शुभादशुभसंसक्तो नूनं निंद्यस्ततोऽधिकरू।
पुररू प्रियंवदरू किंतु पृष्ठे निंदापरायणरू।2।

सत्कर्म से विमुख हो जाना और कुकर्म करना निस्संदेह बुरा है। परंतु किसी के मुख पर तो हँसकर बोलना और पीठ–पीछे उसकी निंदा करना उससे भी बुरा है।

तत्त्वार्थसूत्र आचार्य उमास्वामी कहते है –

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचौर्गोत्रस्य 6/25

परनिंदा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का आच्छादन या ढँकना और असद्गुणों का प्रगट करना ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।

ग्र्हा

दृगुरुसाक्षिदोषप्रकटनं गर्हा।

(समयसार/तात्पर्यवृत्ति 306)

गुरु के समक्ष अपने दोष प्रगट करना गर्हा है।

पंचाध्यायी/उत्तरार्ध 474

गर्हणं तत्परित्यागरू पंचगुर्वात्मसाक्षिकरू।

निष्प्रमादतया नून शक्तितरू कर्महानये।474।

निश्चय से प्रमाद रहित होकर अपनी शक्ति के अनुसार उन कर्मों के क्षय के लिए जो पंचपरमेष्ठी के सामने आत्मसाक्षिपूर्वक उन रागादि भावों का त्याग है वह गर्हा कहलाती है।

आलोचना –

प्रतिक्षण उदित होनोवाली कषायों जनित जो अंतरंग व बाह्य दोष साधक की प्रतीति में आते हैं, जीवन शोधन के लिए उनका दूर करना अत्यंत आवश्यक है, इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आलोचना सबसे उत्तम मार्ग है। गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से अपने सर्व छोटे या बड़े दोषों को कह देना आलोचना कहलाता है। यह वीतरागी गुरु के समक्ष ही की जाती है, रागी व्यक्ति के समक्ष नहीं।

आलोचना सामान्य के लक्षण –

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडिय अणेयवित्थरविसेसं।

तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया।। 385

जो वर्तमान काल में शुभ–अशुभ कर्म रूप अनेक प्रकार ज्ञानावरणादि विस्तार रूप विशेषों को लिए हुए उदय आया है, उस दोष को जो ज्ञानी अनुभव करता है, वह आत्मा निश्चय से आलोचना स्वरूप है।

(समयसार / आत्मख्याति गाथा 385)

नियमसार, मूल या टीका गाथा 109

जो पस्सदि अप्पाणं समभावे संठवित्तु परिणामं।

आलोयणमिदि जाणह परमजिणंदस्स उवएसं ॥109॥

जो (जीव) परिणाम की समभाव में स्थाप कर (निज) आत्मा को देखता है, वह आलोचन है ऐसा परम जिनेंद्र का उपदेश जानना।

सर्वार्थसिद्धि में कहा है –

गुरु के समक्ष दश दोषों को टालकर अपने प्रमाद का निवेदन करना (व्यवहार) आलोचना है।

धवला पुस्तक 13 में कहा गया है –

अर्थात् आस्रव से रहित, श्रुत के रहस्य को जाननेवाले, वीतराग और रत्नत्रय में मेरु के समान स्थिर ऐसे गुरुओं के सामने अपने दोषों का निवेदन करना (व्यवहार) आलोचना नाम का प्रायश्चित है।

2. आलोचना के भेद

भगवती आराधना में

आलोचना के दो ही प्रकार हैं – एक ओघालोचना दूसरी पदविभागी आलोचना अर्थात् सामान्य आलोचना और विशेष आलोचना ऐसे इनके और भी दो नाम हैं। वचन सामान्य और विशेष, इन धर्मों का आश्रय लेकर प्रवृत्त होता है, अतः आलोचना के उपर्युक्त दो भेद हैं।

मूलाचार, आचारवृत्ति, गाथा 619 –

गुरु के समीप अपराध का कहना आलोचना है। वह दैवसिक, रात्रिक, ईर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक सांवत्सरिक, उत्तमार्थ – इस तरह सात प्रकार की है।

नियमसार, मूल या टीका गाथा 208

आलोचना का स्वरूप आलोचन, आलुंच्छन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि ऐसे चार प्रकार शास्त्र में कहा है।

भावना द्वात्रिंशतिका ग्रन्थ में कहा है –

विनिन्दनालोचन गर्ह णैरहं, मनो–वचः काय–कषाय–निमित्तम्।
निहन्मि पापं भव दुःख कारणं, भिषग्विषं मन्त्र–गुणैरिवाखिलम्।।7।।

(भिषक्) वैद्य (मन्त्र–गुणैः) मन्त्र गुणों के द्वारा (अखिल विषं इव) जैसे समस्त विष को नष्ट कर देता है उसी प्रकार (अहं) मैं (विनिन्दमालोचन गर्हणैः) निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा (मनो–वचः काय–कषाय–निमित्तम्) मन, वचन, काय और कषाय के निमित्त से (भव–दुःखकारणं) संसार के दुःखों के कारणभूत (पापं) पाप को (निहन्मि) नष्ट करता हूँ।

सामायिक देशना में आचार्य श्री लिखते है कि –

स्वसाक्षीपूर्वक आलोचना 'निन्दा' है तथा धर्मात्माओं के बीच में जो अपनी आलोचना है, वह 'गर्हा' है। गुरुचरणों में जो निवेदन किया है, वह 'आलोचना' है। पर इतना ध्यान रखना कि हर व्यक्ति के सामने अपने दोषों को मत कहना। भूल तुमने की थी, वो भूल थी। पर महाभूल ये की कि दूसरे से अपनी भूल कही। भैया! गुरु तो गुरु रहता है। आज तुम्हारी पट रही है, तब तक लोग छुपा रहे हैं। जरा कुछ हुआ, तो ढिंढोरा पीटेंगे। जीवन में सबसे अपना दोष नहीं कहना। मात्र जाकर गुरु से आलोचना करना। ये काल अच्छा नहीं है और गुरु भी देख लेना।

प्रायश्चित्त देने का अधिकार आचार्य मात्र को है –

आचार्य में आठ गुण होते हैं। प्रायश्चित्त देने का अधिकार आचार्य मात्र को है। आजकल तो सभी प्रायश्चित्त देने लगे है। प्रायश्चित्तशास्त्र हैं, वे आज तक किसी को पढ़ने को नहीं मिल रहे। जब आचार्य अपने शिष्य को आचार्य बनाता है उसके पूर्व एकान्त में सबसे मांगलिक स्थान पर उनको गुप्त रूप में प्रायश्चित्त ग्रंथ पढ़ाता है। जिनका नाम रहस्य ग्रंथ है और मात्र गुरु शिष्य के बीच में रहते हैं वे ग्रंथ। उन ग्रंथों को सुनने का भी अधिकार नहीं है श्रावकों को। और श्रावक तो दूर हैं, सभी मुनिराजों को भी नहीं है। जो आचार्यत्व के नजदीक हैं, उनको ये आगमग्रंथ पढ़ाया जाता है प्रायश्चित्त शास्त्र। इसलिए जिस विद्या का जिसको ज्ञान नहीं है, जिसका अधिकार नहीं

है, अनधिकृत चेष्टा कोई न करे। **मुनि, आर्यिका, एलक, क्षुल्लक कोई भी प्रायश्चित्त देते हैं, ये अनधिकृत चेष्टा है।** उस ग्रंथ का भी तुमको ज्ञान नहीं है, न्यायालय का बोध नहीं है। भैया! आपने अध्ययन किया है, तब वकालत करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। अध्ययन के अभाव में तुम क्या वकालत करोगे? अध्ययन के बाद तुम्हारा अनुभव चलता है। लेकिन अनुभव तभी चलता है, जब अध्ययन होता है। ऐसे ही आचार्य पद के पूर्व आचार्यत्व का अध्ययन कराते हैं। आचार्य विरागसागरजी महाराज जब मुझे प्रायश्चित्तशास्त्र पढ़ा रहे थे, तब पूरा कक्ष पैक था, पर्दा पड़ा हुआ था, उस कक्ष में मैंने अध्ययन किया था। सामायिक देशना, पृ. 81, 82

शिष्य के 6 काल –

पुरुष कैसे दीक्षा लेते हैं कैसे शिक्षा ग्रहण करते हैं और कैसी व्यवस्था से रहते है – ये सब बाते काल भेद कर के समझनी चाहिए। शिष्य के 6 काल होते हैं। काल कहो, परिस्थिति कहो, जिस समय में जो परिस्थिति हो उस परिस्थिति को यहां काल कहा गया है।

'पंचास्तिकाय ग्रंथ' की गाथा क्रमांक 173 की हिन्दी व्याख्या में वर्णीजी ने विस्तृत व्याख्या की है –

1. दीक्षा का काल
2. शिक्षा काल
3. गणपोषणकाल
4. आत्मसंस्कार
5. सल्लेखना
6. उत्तमार्थकाल

जो परम शिष्य है, निकट भव्य है, तद्भव मोक्षगामी है, उसके जीवन में ये 6 परिस्थितियां आती हैं, किन्तु केवल यह पूर्ण नियम नहीं बनता कि क्रम से ये 6 काल सबके आते ही है तब ही मोक्ष होता है यह भी प्रायः नियम है।

आचार्य विशुद्धसागर जी महाराज ने सामायिक देशना ग्रन्थ में लिखा है कि संघ की व्यवस्था में कोई प्रश्न की आवश्यकता नहीं है। **'पंचास्तिकाय ग्रंथ'** उठाकर देखो। मुनियों के छह काल आये हैं। पहला काल दीक्षाकाल, दूसरा शिक्षाकाल। **जो अभिनव मुनि है,**

उसको मंचों की ओर नहीं दौड़ना चाहिये, ग्रंथों की ओर देखो। जो ग्रंथों को नहीं देख पाते हैं, वे जीवन में विह्वल हो जाते हैं। मंचों की ओर नहीं, ग्रंथों की ओर निहारिये शिक्षाकाल में। **शिक्षाकाल जब पूर्ण हो जाता है तब तीसरा काल आता है, गणपोषण–काल यानी वे संघ का संचालन करें और शिक्षा–दीक्षा दे सकते हैं,** परन्तु उलझ कर न रहे जायें। चौथाकाल आता हे आत्मसंस्कारकाल। अब धीरे–धीरे सब व्यवस्थाओं पर न्यूनता करते हुए आगे बढ़े। अब संन्यासकाल सल्लेखना की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। जैसे जितने अच्छे स्कूल खोले जाते हैं उनमें जुलाई के महीने में पूरे वर्ष का सब लेखा–जोखा तैयार हो जाता है कि क्या–क्या करना है साल भर। वैसे ही मेरा सोच है कि जीवन का पूरा लेखा–जोखा दीक्षा के दिन ही कर लेना चाहिए कि कितने वर्ष तक क्या करना है। इसके बाद मौन लेकर सल्लेखना की साधना करना है। बड़ा अपयश है, कलंक है कि एक आचार्य पचासों मुनियों की सल्लेखना करा दे और आचार्य की सल्लेखना न हो। ये तो बहुत बड़ा कलंक हो गया। इस आसन पर ही दृष्टि न रहे, आत्म आसन पर दृष्टि रहे। ये काठ का आसन मेरी समाधि का साधन नहीं है। लगानेवाले जानें, देखनेवाले जानें। आसन मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। आचार्य विरागसागरजी ने बिठाया है सिंहासन पर। मेरे लिए तो वे गुरुदेव हैं। मैं तो जो हूँ, सो हूँ।

आत्मसंस्कार–काल संन्यासकाल, अब अंतिम काल है उत्तमार्थ काल। 'छाछ त्याग पानी राखे, पानी तज संथारा' धन्य हो उस जीव के लिए बुद्धिपूर्वक वह जीव पानी का भी त्याग कर रहा हो। भगवान् ! उस अंतिम दिन की स्मृतियाँ आ रही हैं। देखो, आचार्य आदिसागर महाराज, जिनकी सल्लेखना कराने आचार्य शान्तिसागर महाराज गए थे। धन्य हों वे आचार्य शान्तिसागर महाराज, जिन्होंने छत्तीस दिन तक सल्लेखना की आराधना की हो और धन्य हों आचार्य विमलसागर और ज्ञानसागरजी, जिन्होंने अपने पद को अपने शिष्य को कैसे सौंप दिया हो। बेटा! अब पकड़ो इसको, ये हमारे समाधि का साधन नहीं है। लगता हे वे नयन कितने महान होंगे, जिन नयनों ने ये दृश्य देखा होगा? गुरु अपने शिष्य को पद सौंप कर स्वयं सल्लेखना की ओर बढ़े। इस धरती पर जितने आचार्य भगवन्त विचरण कर रहे हैं, मेरी यही भावना है कि भगवन्। जो आचार्य शान्तिसागर, शिवसागर, आदिसागर, ज्ञानसागर आदि ने किया है, बस, वर्तमान के आचार्यों की पीढ़ी वह ही करे। यही जैनदर्शन है। पद लेकर चले गए तो समाधि नहीं होती। किसकी हुई,

किसकी नहीं हुई, इन विकल्पों में जिओगे तो भी समाधि नहीं होगी। इसलिए जगत की चिंता छोड़ो।

आचार्य श्री सामायिक के विषय में कहते है कि –

सामायिक में पाठ चलता है। एक बार सामयिक पाठ हो गया तो किसी की निन्दा–आलोचना के परिणाम हो ही नहीं सकते। निज निन्दा करो। जो पर की निन्दा करता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता। जो स्वयं की निन्दा नहीं करता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता।

'मन, वच, काय से उपार्जित, संसार के दुःखों के कारणभूत पाप को मैं निन्दा, आलोचना, गर्हा के द्वारा नष्ट करता हूँ। जैसे वैद्य मंत्र के द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता है।

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी आत्मा की शुद्धि के मार्ग को **'प्रतिक्रमण'** कहते हैं। श्रमण–परंपरा में प्रतिक्रमण एक शाश्वत परंपरा है। जब किसी का किसी प्रकार से व्रतों में अतिक्रमण हो जाता है, तब उसका प्रतिक्रमण किया करते हैं। निज की आलोचना, निज की निन्दा। निज निन्दा को स्वीकार कर पाना और निज के दोषों को स्वीकार कर पाना विश्व का बहुत बड़ा चमत्कार है। गलती को गलती स्वीकार कर लेना, दोष मान लेना ज्ञानी। इससे बड़ा कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है। बाकी के प्रायश्चित्त बाद के विषय है। **सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो चित्त की शुद्धि है।** जिसकी चित्तशुद्धि करने की भावना होगी, वही प्रायश्चित्त लेने के परिणाय करेगा। जिसकी भव–संसति दीर्थ है जिसका संसार प्रचुर है, ऐसे जीव के परिणाम नहीं हो सकते। भैया! जिसका संसार दीर्घ है, उस जीव के परिणाम अपने दोषों को दोष स्वीकारने के होते ही नहीं है, निर्दोष होने के परिणाम ही नहीं होते हैं। पाप में ही मस्त है, पाप में ही आनन्दित है। आर्त्त–रौद्रध्यान जिसका स्वभाव वन चुका हो, ऐसे जीव के कभी प्रायश्चित्त लेने के परिणाम नहीं होते। ये तो उसी क्षण समझ में आता है। दोष होते ही अंतरंग में शोधन की भावना आ रही है तो समझना कि भवितव्यता पवित्र है। भूल से दोष हो सकता है। भूल से दोष हो जाये, कोई विकल्प मत करना, पर दोष हुआ है, ये भूल मत जाना।

आचार्यभगवान् क्या कह रहे हैं? जैसे विष को मंत्रवादी वैद्य निर्विष कर लेता है, ऐसे–ही हुए–दोष को निन्दा–आलोचना के माध्यम से मुमुक्षु जीव स्वयं निर्दोष कर

लेता है। ओलोचनाएँ पवित्र नीर हैं। बाहर के पानी से, दुनियाँ के लोग नदियों में स्नान करने जाते हैं। ये नदी के स्नान से शरीर का मैल घुल सकता है, परन्तु इन परिणामों को धोने का नीर निन्दा, गर्हा, आलोचना है। निन्दा कैसे हो? भैया 'हा दुट्ठ कयं' हे प्रभो! मैंने दुष्ट कार्य किया। सामायिक देशना 83

आचार्य श्री संसार के जीवों को सम्बोधित करते हुए कहते है कि भीतर जाकर देखो, हाय मैंने दुष्ट कृत्य किया। शिशु अवस्था से लेकर पूर्वापर तक हाय। मैंने दुष्ट किया। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पाँचों पापों में लवलीन होकर 'हाय दुट्ठ कयं,' कितना दुष्ट कार्य किया है। एक दोष से बचने के लिए, दोष से ही बचने के लिए नहीं, एक दोष की निन्दा से बचने के लिए कोटि–कोटि दोष और किये हैं। एक असत्य को छुपाने के लिए कोटि–कोटि असत्य का प्रयोग करना पड़ता है। एक असला को छुपाने के लिए असत्य का ही आलंबन लेना पड़ रहा है। पर ध्रुव सत्य है कि अग्नि को छुपाने के लिए रुई का लपेटना कार्यकारी नहीं होता। अग्नि को रुई से छिपायेगा तो अग्नि और धधक जायेगी। ऐसे ही दोष को दोष से छिपाना चाहता है तो निर्दोष परमात्मा कब बन पायेगा? 'हा दुट्ठ कयं' यह स्पष्ट स्वीकार किया जाए।

एक अज्ञानी ने काम–कषाय के आवेग में आकर व्यभिचार जैसा घोर पाप कर लिया। वो तो एक घोर पाप कर ही लिया, पर हे अज्ञानी! ये तूने क्या किया कि उस जीव के टुकड़े कराकर फेंक दिये। हे पापी। तूने पाप पर भी घोर पाप किया। एक पाप असंयम सेवन का किया है। यदि असंयम का सेवन कर ही लिया था, तो जीव को जन्म दे देते। हो सकता था कि ऐसा कोई महापुरुष जन्म ले लेता जो भविष्य में जिनशासन को जयवंत करता। परंतु क्या किया? आज एक जमाना चल रहा है कि दो बेटे दिख रहे हैं या एक बेटा दिख रहा है। इसका तात्पर्य ये नहीं समझना कि तूने एक ही बार पाप किया है। ये लोग अच्छे थे, भैया। बुरा लगे तो क्षमा कर देना, और लगे तो लग ही जाना चाहिए। वे पुराने बुजुर्ग अच्छे थे जिनके घर में दस–पाँच संतानें होती थीं। कम–से–कम पाप के बाद पाप तो नहीं किया और वे संतानें सनातन धर्म को आगे बढ़ा रही हैं। क्या तुमने ही देश का ठेका ले लिया है कम संतान का? यदि संतान नहीं बचेगी, तो सनातन धर्म कहाँ से चलेगा? पुनः घर–परिवार भरा–पूरा सुन्दर होता है। याँद आपके अन्दर धर्म है, तो बहुत अच्छा है कि असंयम का सेवन ही न करो, ब्रहम के साथ जीवन जियो और ब्रह्म के साथ जीवन नहीं जी पा रहे हैं तो ज्ञानी। जीव को जन्म दो।

पाप के बाद तो पुनः पाप मत करो। एक बार के असंयम में नौ कोटि जीवों का घात होता है। अब सोचो, हमने जीवन में क्या किया है? कम–से–कम जिनालय में अरहन्त देव के पादमूल में बैठ करके प्रतिक्रमण ही कर लिया करो कि स्वामी। मैंने दुष्ट कृत्य किया है।

ऐसी मैत्री भी मत करना जिससे मित्रता के राग में किसी बालक की हिंसा करना पड़ जाये, क्योंकि समयसार की रक्षा तभी होगी, जब चारित्र की रक्षा होगी और चारित्र को रक्षा नहीं है तो समयसार की रक्षा कहाँ होगी? कृत, कारित, अनुमोदना को समझो।

महिलाओं को सम्बोधित करते हुए आचार्य श्री गर्भपात के विषय में कहते है कि –

माँ। पता नहीं कितने भवों में बिलख जाओगी माँ बनने के लिए। यदि आपने किसी बहू–बेटी का गर्भपात में सहयोग भी किया है, अनुमोदना भी की है, प्रेरित भी किया है, तो विश्वास रखना, एक मनुष्य के बेटे के तुमने टुकड़े–टुकड़े करके फिंकवाया है, उस पाप का बंध कहाँ जायेगा? भैया। ध्यान रखना, किसी के घर में किसी ने आत्मघात कर लिया हो तो छह महीने का सूतक लगता है। ये कोई समझौते की बात नहीं है। पाप लगता है यानी लगता है। आजकल विद्वानों ने बदल दिया, मात्र माता–पिता को कह दिया, बाकी का सब गोल कर दिया भैया! ऐसा जिनवाणी में कहीं लिखा नहीं है। ये निजी सोच है। अध्ययन करें। **छह महीने का सूतक लगता है, और सहज मरण हो तो बारह दिन का सूतक लगता है, तेरहवें दिन शुद्धि होती है। ये विषय अलग है कि तुम तीन दिन में निपटा लेते हो, लेकिन सूतक तो बारहवें दिन तक ही रहेगा। शुद्धि तेरहवें दिन ही होगी। ये शुद्धि की परंपरा का नाश मत कर देना। आगमिक व्यवस्था को खंडित मत कर देना। भावों की शुद्धि तभी संभव है जब द्रव्यशुद्धि होगी। बिना द्रव्यशुद्धि के भावों की शुद्धि नहीं होती है। अभिनव परंपराएँ मत निकाल लेना। अग्नि की आयु तीन दिन की होने के कारण तुम तीन दिन की शुद्धि करते हो, लेकिन ध्यान रखना कि ग्रंथों में मरण का सूतक बारह दिन का है। भगवान का पूजन–विधान का समय तो तेरहवें दिन ही होगा, तीसरे दिन नहीं होगा।** बाकी शुद्धियाँ तीसरे दिन हो जायेंगी। जिसके यहाँ अपघात करके मरण हुआ है, उनकी छः माह बाद ही शुद्धि होगी।

ज्ञानी! थोड़ी मर्यादा रखो। मर्यादा बहुत आवश्यक है। समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर देगा तो पता नहीं क्या हो जायेगा। शुद्धि का पूरा ध्यान रखो। चार–पाँच दिन की जो माताओं की अशुद्धि है, उसका पूर्ण पालन होना चाहिए। सूतक पातक का पूर्ण पालन होना चाहिए। यदि इनका पालन नहीं करता है तो मूलाचार, तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि वह जीव यदि धर्मकार्य भी करता है तो कुभोगभूमि व भवनत्रिक का पात्र बनेगा, लेकिन उच्च जाति का देव नहीं बन सकता है। कभी लोगों को लगता है कि मुझे दान देना ही है, आहार कराना ही है, और सोले का ध्यान कुछ नहीं है, तो उसके लिए स्पष्ट लिखा है कि अशुद्ध द्रव्य को अशुद्ध अवस्था में यदि आपने पात्रदान आदि किया है तो पुण्य तो मिलेगा, लेकिन वह पुण्य तुम्हारे लिए भवनत्रिक में ले जायेगा। भवनवासी या व्यन्तर बनायेगा, स्वर्ग का देव नहीं बन पायेगा। ज्ञानी। ये तो ठीक है, बारह दिन का सूतक, छः महीने का सूतक। लेकिन जिस कुटुम्ब में जिस परिवार में **भ्रूण हत्या** हुई हो, गर्भपात हुआ, हो उस कुटुम्ब में सूतक कभी भी समाप्त ही नहीं होता। प्रायश्चित्त लो जाकरके। श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित्त ले लेना। लेकिन ऐसा भी मत करना कि लालों का घात कराके कहूँ कि प्रायश्चित्त ले लूँगा। कभी भूल से दोष हो गया हो तो प्रायश्वित ले लेना। भावनात्मक ग्रंथ का वाचन नहीं होगा तो भावशुद्धि नहीं बनेगी। उपदेशों में हजारों की भीड़ लग जाती है, ताली पीट–पीट करके लोग चले जाते हैं और फिर ठेले पर खड़े होकर चाट खाते हैं **'हा दुट्ठ कयं'**। नियोग मिला है, जितना मिला है उसका उपयोग कर लो। सामायिक देशना 85

एक आलू के अन्दर विराजे **'एगणिगोद सरीरे जीवा दव्वप्यमाणदो दिला। सिद्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वितीद कालेण।।16।।** (गो. जी)' अतीतकाल में जितने सिद्ध हो चुके हैं, उससे अनन्तगुणे जीव एक आलू के अंशमात्र में है। ज्ञानियो। वे जीव सिद्धत्व शक्ति से सम्पन्न थे। उनमें भव्य भी हो सकते हैं, ऐसे जीवों को तुम मुख में डालकर पेट में ले गये और ज्ञानी यहाँ कह रहा है कि में शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ। ये शुद्ध–बुद्ध दशा कहने मात्र की नहीं है, करुणा भी तो आना चाहिए। द्रव्यानुयोग का अर्थ करुणा से रहित नहीं है।

जीवदया तो धर्म का मूल है। धन्य हो श्रमण संस्कृति, जयवन्त हो ऐसी बीतराग संस्कृति, जिसमें श्वास लेने को भी कहा कि संभल कर लेना। यदि मंद श्वास से काम चल रहा हो तो ज्यादा श्वासें मत खींचना, क्योंकि श्वास लेने में भी जीवों की हिंसा होती है। लेकिन उसके बिना तुम जी नहीं सकते हो इसलिए कम–से–कम श्वासें लो,

अधिक श्वासें तो मत खींचो। जितना ध्यान करेगा, श्वासें उतनी मंद होंगी। विश्वास रखना, निष्कषाय परिणाम जैसे–जैसे होते जायेंगे, आपकी श्वासें मंद होती जायेंगी। जंभाई, छींक में क्या है जैन परम्परा? जहाँ एक मुनिराज को जंभाई आये तो उसका भी प्रायश्चित्त लेते हैं, क्योंकि अँगड़ाई या जंभाई लेने में उष्ण श्वास बाहर निकला था और प्रमाद झलक रहा था। उसका भी प्रायश्चित्त होना था। छींक आ जाती है तो जो श्लेष्मा बाहर निकला, अन्दर के कीटाणु बाहर फिंके हैं। बाहर जहाँ पहुँचा, वहाँ सूक्ष्म जीवों की विराधना हुई है। भगवन्! मेरे शरीर के माध्यम से उत्पन्न हुए द्रव्य से इन जीवों का घात हुआ है। छींक आने पर जैनमुनि प्रायश्चित्त लेते हैं। जैनशासन में छींक का भी प्रायश्चित होता है, उस समय की करुणा कितनी विशाल होगी।

अरिहंत मुद्रा को, जैनमुनि को मात्र पिच्छी कमण्डल लिए ही मत देखा करो। ये तो आँखों का विषय है। उनकी अन्दर की बात तो सुनो, तब कितनी श्रद्धा उमड़ती है। हे भगवन् । छींक तो सहज क्रिया है, मैंने नहीं ली है। ज्ञानी! सहज क्रिया नहीं है ये, शरीर का विकार है और भैया। कीटाणु के कोई बल होता नहीं है। लघुशंका को जायें तो प्रायश्चित्त लें, दीर्घशंका को जायें तो प्रायश्चित्त लें। इनका तो कायोत्सर्ग करते–करते पूरा दिन निकलता है, शुभ क्रिया तो छूटती ही नहीं है सच्चे योगी की। सामायिक देशना – 86

श्रावकों को जनेऊ क्यों धारण करना चाहिए? आप लघुशंका गये, बले गये। जिसने यज्ञोपवीत धारण किया है, वह कान पर रखेगा। यानी शुद्धि के बाद कायोत्सर्ग करेगा, बिना कायोत्सर्ग के नहीं उतारेगा। और जो **व्रती मलमूत्र के विसर्जन/क्षेपण करते हुए भी मुख से बोल रहा है, वो ज्ञानावरणी कर्म के तीव्र बंध को प्राप्त होता है।** आप लोग सब अच्छे से सुनना, क्योंकि ये बातें कभी–कभी प्रकट होती हैं। जिनको स्मरण नहीं आ रहा है. बुद्धि काम नहीं कर रही है, क्षयोपशम काम नहीं कर रहा है, याद नहीं हो रहा है, उसका कारण यह है कि आपने जिनवाणी का अविनय किया है। अशुद्ध अवस्था में मुख से बोलना जिनवाणी का अविनय है। आप कह सकते हैं कि शास्त्र की बात थोड़े ही बोल रहा था।

भैया! कुछ भी बोलो, जो भी आप बोलेंगे वह स्वर–व्यंजन से रहित तो होगा नहीं। यदि गाली भी दे रहे हो तो ज्ञानी! वह भी शब्द से बनी हुई है। अच्छा भी तो बोल सकते हो। **'हा दुट्ठ कयं'** मैंने दुष्ट कार्य किया है। आप लोगों ने तो कभी दुष्ट कार्य किया ही

नहीं है ना? अब मत कहना किसी को कि तू दुष्ट है। हे ज्ञानी। एक लक्ष्य अपनी ओर ले जायें। मैंने जो दुष्ट कर्म किये, वही तो दुष्ट है। कौन दुष्ट है? ये सूत्र गौतमस्वामी कृत है। जरा अपने नेत्र बंद करके तो निहार लो कि मैंने अपने जीवन में क्या–क्या किया है? अंतर इतना है कि पूर्व के धर्म के संस्कार रहे, सो श्री जिनालय भी आते रहे, देव–शास्त्र–गुरु वंदना भी करते रहे और साथ में बंध भी करते रहे। ये तो परम पुण्य का उदय है कि कम–से–कम तेरे अंदर संस्कार तो रहे, सो यहाँ तक आ गये। जिनके ये भी संस्कार नहीं हैं, वे तो बेचारे निमग्न हैं पाप में। ये मत सोचना कि ये जैन नहीं है, उनको पाप–पुण्य नहीं लगता है, यह तुमको ही लगता हो। वे जानते नहीं हैं, इसलिए अज्ञानता में पापबंध को प्राप्त हो रहे हैं। जिस दिन उनको बोध हो जायेगा, तब उनको भी समझ में आ जायेगा श्हा दुट्ठ कयं।श इस भ्रम को भी निकाल देना, महाराज! हम तो जानते ही नहीं थे तो हमको क्यों पाप लगेगा? ज्ञानी। सुन ध्यान से–अचानक अचानक तुझे पता नहीं था, किसी के मकान में तू गया और उनकी नल के पाइप में कहीं छेद था, आपके ऊपर पानी गिर गया, तुझे मालूम ही नहीं चला। तूने कहा भी नहीं था कि तेरे ऊपर पानी गिरे। किसी ने कहा भी नहीं था कि मैं तुम्हारे ऊपर पानी डालता हैं। अज्ञानता में तेरे शरीर पर पानी आ जाये, ज्ञानी! शरीर गीला होगा कि नहीं, कपड़े गीले होंगे कि नहीं? हे मुमुक्षु ! पानी चाहे अज्ञानता में गिरे या जानकर गिरे, पाप चाहे अज्ञानता में करो ज्ञानी! आत्मा तो पाप से गीली होगी ही होगी। बंध को प्राप्त होगी। कुछ लोगों का ऐसा उल्य चिन्तन चलता है कि मैं तो नहीं जानता था, तो मुझे क्यों होगा? पाप–पुण्य की बातें वे लोग करें जो ज्ञानीलोग हैं। बातें तो ज्ञानी कर लेगा, लेकिन पाप–पुण्य न ज्ञानी को देखता है। न अज्ञानी को देखता है। वह कहता है कि मैं तीर्थंकर तक को भी नहीं छोड़ता हूँ, तुम कौन होते हो? आस्रव होता है। जिनता विवेक विपाक पर आता है, उतना विवेक आस्रव पर आ जाये, तो विपाक पर क्यों रोना पड़े? विपाक का अर्थ होता है फलदान, अनुभाग। आस्रवभाव, आत्मभाव। किन–किन माध्यम से आस्रव किया है? इतने जीव बैठे हैं, इनके बारे में अच्छा सोच लो तो तुम्हारा क्या चला जाएगा? कुछ भी नहीं जायेगा। पर विश्वास रखना, बहुत–कुछ चला जायेगा। जो–जो भगवान बने हैं, वे सबके बारे में अच्छा सोचते रहे, सो उनका बहुत–कुछ चला गया। एक सौ अड़तालीस कर्म चले गये। तीर्थंकरप्रकृति का बंध अच्छा सोचनेवाले को होता है। जगत् के प्राणिमात्र के प्रति करुणाबुद्धि रखते हैं, वात्सल्य का भाव रखते हैं,

सो उनके 148 कर्म नष्ट हो गये और वे सिद्ध बन गये। अच्छा सोचने में क्या जाता है? ज्ञानी! पाप चले जायेंगे पर, विश्वास रखो, पुण्य आयेगा। बुरा सोचनेवाले को क्या मिलता है? प्रातः के मांगलिक नगाड़े बजते हैं, मंदिरों में मांगलिक घंटियाँ बजती है, लोग भगवान् का अभिषेक करने पहुँचे होते हैं। उस समय में उनके गले जोर से चिल्लाने के कारण बाहर निकले मिलते हैं। क्या हो गया? कुछ भी तो नहीं हुआ, भैया। ये वही हैं जो प्रेम से, वात्सल्य से धर्मात्मा को गले नहीं लगा पाये। जो कानों से जिनवाणी नहीं सुन पाये, आज इनके कान पकड़कर कटघरे में खड़ा कर दिया गया है।

हाय भगवन् ! ये क्या? जितने काँटेदार वृक्ष हैं, मालूम ये कौन हैं? जो तीर्थ भूमि में पहुँचे, निर्वाणभूमि में पहुँचे, धर्मक्षेत्र में पहुँचे, निर्ग्रन्थ मुद्राओं को भी धारण कर लिए, लेकिन जिन्होंने कानों को काटना नहीं छोड़ा, दूसरे की निन्दा करना नहीं छोड़ा था, ये वे ही काटे हैं। ज्ञानी! जो पहले कोई मुख से काटता था, कोई कानों में काटता था, आज उसके सर्वाङ्ग में काँटे–ही–काँटे हैं। वे बबूल के वृक्ष बने खड़े हुए हैं।श प्रत्यक्षं कि प्रमाणम् ?श देख लो, ये काँटों का वृक्ष है। ये जो जूही है, चम्पा चमेली है, केतकी है, ये सामान्य जीव नहीं है। ये स्वर्ग से च्युत हुए जीव हैं। स्वर्ग के देव एकेन्द्रिय बने हैं। रौद्रध्यान से, आर्त्तध्यान से 'तह ते चय थावर तन धरे।' वे एकेन्द्रिय बने हैं। वे आज पुष्प के रूप में खिले हैं, क्योंकि इन्होंने जो निदानबंध कर लिया कि हे भगवन्! मैं मध्यलोक में जाऊँगा, तो नौ महीने गर्भ में कैसे रहूँगा? उन्हीं के फल से पुष्प बन गये। माताओ! इस पुण्यभूमि में बैठकर किसी के बारे में अशुभ मत सोचो।

एक बात पूहूँ? जिस परिसर में आप बैठे हैं, माना कि आज ही निर्णय हो जाए कि इस भूमि पर मंदिर का शिलान्यास होनेवाला है। तू जरा भी धर्मात्मा होगा और मुझे मलविसर्जन की जरा भी पीड़ा होगी, तो इस मुहूर्त में तू मलविसर्जन यहाँ नहीं करेगा। इतना पापी तो नहीं है ये जीव, जिसे मालूम चल जाये कि यहाँ मंदिर बननेवाला है, वहाँ मलविसर्जन करें। नहीं करेगा। भैया ! जिस भूमि पर जिनमंदिर बननेवाला हो, उस भूखंड को भी हम पवित्र मानकर मलविसर्जन नहीं करते। हे माँ। जिस भूमि पर जिनबिम्ब की रचना का प्रस्ताव आ जाये और आपको मालूम चल जाये, तो उस भूमि पर तुम कचरा नहीं फेंकती हो, मलविसर्जन नहीं करती हो। तो आज मैं आपसे कहता हूँ, कि ये मेरा भगवान् आत्मा प्रस्तावित श्री जिनेन्द्र भगवान है। इस प्रस्तावित निज अंतरंग जिनालय में ज्ञानी! किसी प्रकार का पापपक मत रखना। मालूम चल गया ये प्रस्तावित

भूमि है, हे ब्रह्मचारियो। ये तैरा प्रस्तावित भैष है, तेरी आत्मा भगवान बननेवाली है। जब ज्ञानी! प्रस्तावित भूमि पर मल का विसर्जन नहीं हो सकता है, तब प्रस्तावित जिनदेव पर पाप का विसर्जन कैसा? भैया। कभी तुझे पाप करे का विकल्प आये तो प्रस्तावित जिनालय में नहीं करना, बाकी तू जाने। अब कहाँ करने जायेगा? मिथ्यात्व के मंद उदय आते ही, सम्यकत्व प्रकृति के प्रकट होते ही श्ज्ञानीश संज्ञा प्रारंभ हो चुकी है। आचार्य ब्रहमदेव सूरि ने श्वृहद् द्रव्यसंग्रहश की टीका में स्पष्ट लिखा है कि सम्यग्दृष्टि जीव एकदेश जिन है– चतुर्थ गुणस्थानवर्ती। भैया। इन जिनों को देखकर मुस्करा देना, इन जिनों की अवहेलना नहीं करना। प्रतिमाधारी तो बहुत ऊँची बात है, जिसको देव–शास्त्र–गुरु पर श्रद्धान आ चुका है, वह देशजिन हो चुका है क्योंकि इसने मिथ्यात्व को जीत लिया है। मंदिर की भूमि में नींव खुद चुकी है, सम्यक्त्व प्रकट हो गया है और प्रतिमा धारण कर ली, एक मंजिल खड़ी हो चुकी है। फिर तो ग्यारह प्रतिमा में...। और फिर निर्ग्रन्ध अवस्था धारण कर ली, तब तो मंदिर में कलश चढ़ गया और जिसने सल्लेखना मरण कर लिया, उसने तो ध्वजा ही चढ़ा दी। ध्वजा फहरा गई उसके मंदिर पर। इसलिए भैया! जितने जीव यहाँ विराजते हैं, वे सव प्रस्तावित जिनदेव हैं। इनके प्रति अशुद्ध भाव मत लाना। कभी भी निन्दा/अवर्णवाद नहीं करना। उनके अगले भाव पवित्र हैं। सामायिक देशना – 88, 89

भैया ! आज तो एक काम करो, तुम रागी तो हो ही, कोई तिलक वगैरह का त्याग तो है नहीं। भैया। केशर या चंदन का घोल बनाकर पकड़ा दो और सभी के माथे पर लिखवा दो, प्रस्तावित अरहन्त देव। व्यवहार में आप श्प्रस्तावित कॉलेजश ऐसा क्यों लगा देते हो? जिससे कोई दूसरे उपयोग में न लें, कोई कब्जा न कर ले। ऐसे ही मैं क्यों लिखवा रहा हूँ श्प्रस्तावित जिनदेवश? जिससे फिर कोई जीव दूसरे काम में न ले–ले इसको। कोई शादी न करा ले, कोई व्यभिचार न कर ले, कोई खोटे काम न कर ले। ये प्रस्तावित जिनदेव हैं। युवा व्यक्तियों के चेहरे पर भी लिख देना भैया! लोग पढ़ेंगे तो कहेंगे कि इनसे कुछ मत बोलो, भैया। ये प्रस्तावित जिनदेन हैं। ऐसे पवित्र परिणाम जिसके हो जायेंगे, भैया! भगवत्ता का आनन्द जब आयेगा, तब आयेगा, लेकिन ध्रुव सत्य है कि तेरे घर में ही भगवत्ता की ध्वनि प्रकट हो जायेगी। ये अद्भुत पवित्र परिणाम है। जिस संस्कृति में एक भटकते तिर्यंच को भी प्रस्तावित जिनदेव कहा जाता है, उस संस्कृ ति में बन गये इन देवों को जिनदेव न कहा जाये तो वे देखनेवाली आँखें ही खोटी हैं।

हा दुट्ठ कयं, हा दुद्ध चितयं। जितना पाप कर नहीं पाता, उतना पाप सोच लेता है। सही बताना, जीवन में पाप कितना किया है और सोचा कितना है? अल्प दिनों के अन्दर, क्षण मात्र में कषाय बदल जाती है, परिणाम बदल जाते हैं। लेकिन उद्रेक में आपने हाय। कितना किसके किसके बारे में बुरा सोच लिया? जरा–सा इच्छित काम नहीं हुआ तो पता नहीं कितना कितना सोच लेते हैं। मेरे से मत कहो, अपने से कहो श्हा दुट्ठ चिंतयंश– हास मैंने दुष्ट चिंतन किया है।

मालूम, मुनि क्यों बनना चाहिए? न घर छोड़ने के लिए मुनि बनना पड़ता है, न परिवार छोड़ने के लिए मुनि बनना पड़ता है। न किसी से मिलने–जुलने के लिए मुनि बनना पड़ता है, तो मुनि बनना क्यों पड़ता है? दुनियाँ में सबसे बड़ा तनाव भोजन है। एक चींटी को देखो, प्रातः वह पाताल के छेद से निकलती है और शाम को रात्रि तक घूमती रहती है, कितना–सा पेट होता उसका। मात्र खाने खाने के लिए उसका काम चलता रहता है। देश का कोई विशिष्ट वैज्ञानिक है वह यदि अपने भोज की व्यवस्था करे तो कभी कोई खोज नहीं कर पायेगा। जितने बड़े–बड़े विद्वान हुए उच्च कोटि के, चोटी के, ये सब गरीब रहे हैं। यदि पैसा कमाने जायेंगे तो विद्या को समय नहीं है और विद्या को समय देंगे तो पैसे को समय नहीं है। उनको विद्या भा गई। लेकिन सुख जो है, न पैसे में है न विद्या में है। ज्ञानी। सुख तो जिसको जिसमें संतुष्टि है, उसमें है। जिसको पैसे में संतुष्टि है, उसको पैसे में सुख दिखता है। जिसको विद्या में संतुष्टि है, उसको विद्या में सुख दिखता है। वे गरीब होकर भी मुस्कराते रहे, क्योंकि उनको विद्या में संतुष्टि है। मुनि लोग क्यों मुस्कराते हैं, क्योंकि छोड़ने के बाद इनको इसमें ही संतुष्टि महसूस हो रही है, इसलिए आनंद है। और संतुष्टि नहीं महसूस होगी तो विश्वास रखना, इन मुनियों से बड़ा दुःखिया इस जगत में कोई नहीं मिलेगा। यदि संतुष्टि नहीं है तो आपको तुष्टि होनी चाहिए। किसी भी देश का वैज्ञानिक होगा, रिसर्च कर रहा, खोज कर रहा, अन्वेषण कर रहा है तो शासन सामान्य लोगो की अपेक्षा वैज्ञानिक को अधिक वेतन देता है। भारत की भूमि पर जितने ऋषिगण विचरण कर रहे हं, ये हमारे धरती के देवता हैं।

पूरे देश की आँखें अपने वैज्ञानिकों पर लगी हैं। गद्दी पर बैठा शासक, उसके बैठने से देश का उत्थान नहीं है उत्थान तो ध्यानियों से वैज्ञानिकों से, खोजियों से है, इंजीनियरों–डॉक्टरों से है। वह अकेला गद्दी में बैठकर क्या करेगा? एक वैज्ञानिक के लिए

खोज कितनी? जो जितनी गहरी खोज करता है, उतना अधिक वेतन देना पड़ता है। क्यों? यदि इसका मन भोजन और पैसे में चला गया, तो इसकी खोज में न्यूनता आ जावेगी, काम को अच्छे से नहीं कर पायेगा। जब बाहर भौतिक खोज के लिए शासन ने व्यवस्था की है, तुम्हें भोजन की भी चिन्ता नहीं है, तो हे वीतराग वैज्ञानिक ! तुम आत्मदेव की खोज करो। तुमको भोजन की भी चिन्ता नहीं है। तुम अंजलि लगाकर निकल जाना, आहार कराने वाले मिल जायेगे। यदि शासन भरपूर वेतन दे, तब भी वैज्ञानिक खोज न करे, तब उसको धिक्कार कहा जायेगा। जिनशासन में किसी भी त्यागी को ये नहीं कहा जाता कि तुम कमाओ तब तुम्हें भोजन मिलेगा। व्रती क्षुल्लक बनते हैं, दशम प्रतिमा लेते ही उसके आहार के लिए समाज पुकारने लगता है। दो तीन प्रतिमाधारी को भी सम्मान से अपने घर में भोजन कराती है।श आओ भैयाजी। मेरे घर चलो।श फिर भी ये वीतरागी जैसे वैज्ञानिकों की ड्रेस होती है। प्रयोगशालाओं के आसपास जनसामान्य को जाना वर्जित है। विशेष ड्रेस में बैठे हैं। अब ज्ञानियों! ये निर्ग्रन्थ योगी जो वीतरागी वैज्ञानिक हैं, इनकी प्रयोगशाला में स्त्रियों का स्थान नहीं होना चाहिए, नपुंसकों का स्थान नहीं होना चाहिए, तिर्यंचों का आना–जाना नहीं होना चाहिए, कोई बच्चे–बूढ़े नहीं आना चाहिए। यहाँ पर इनको एकान्त में प्रयोग करने दीजिये। ये भगवती रसायन चौतन्य धातु की खोज कर रहे हैं। उस खोज में जब ये निष्णात हो जायेंगे, तब स्नातक बनकर अरहन्त बन जायेंगे। सामायिक देशना 90

तीर्थंकर भगवान् के एक हजारआठ नाम होते हैं। दृष्टि को विशाल बनाइये। वैज्ञानिक की बातें कर रहे हो और संकुचित विचारधारा? मुख को बांधना नहीं है, खोलकर रखना है। जयवन्त हों आचार्य विरागसागर, जयवन्त हों आचार्य विद्यासागर, विमलसागर, महावीरकीर्ति। इस भारत की भूमि पर जितने योगी हैं, कुन्दकुन्द–जैसे महायोगी जयवन्त हों। किसान जब गाय से दूध निकालता है तो दो में से एक काम करता है। या तो बछड़े को सामने खड़ा करेगा या फिर उसे खाना डालेगा। जैसे–जैसे वह खाती जाती है, वैसे वह दूध निकालता जाता है, क्योंकि उसके भाव बदले हुए हैं, प्रीति बनी हुई है। प्रीति से दूध निकलता है। और बछड़ा सामने होता है तो प्रीति बढ़ती है व दूध निकलता है। ज्ञानी! **तत्त्व का लाभ तभी होता है, जब मन की विषमताएँ हटकर गाय–जैसे शुद्ध परिणाम होते हैं, तब वात्सल्य का क्षीर झरना प्रारंभ होता है, तब तत्त्व का बोध होता है।** यदि गाय को रुष्ट कर दोगे, तो फिर दूध न निकाल

पाओगे। ऐसे ही आपने परिणामों को रुष्ट कर दिया या संतुष्ट कर लिया कि अब मैं जय बोलूँ कि नहीं बोलूँ, ज्ञानी। उनको तो आनन्द आ ही नहीं सकता है।

मैं तीन कम नौ कोटि मुनियों का भक्त हूँ, क्योंकि तीन कम नौ कोटि मुनिराज द्रब्यलिंग सहित भावलिङ्गी हैं। वे वीतरागी श्रमण बन्दनीय है, पूजनीय है। **'वन्दे तद्गुण लब्धये।** सामायिक देशना – 92

आचार्य श्री सामायिक देशना में कहते है कि –

कभी–कभी मन कहता है कि कुछ मत कहो, सिर्फ एक दूसरे को देखो, प्रस्तावित भूमि–खण्ड को देखो और सोचो कि कैसे–कैसे बनेगा? **'हा दुट्ठ भासियं'** मैंने दुष्ट भाषण किया है। भैया। देखो, जनक जननी होंगे तो बोलना तो पड़ता है, लेकिन ऐसा बोलना कि मिश्री–जैसा घुले। ऐसा मत बोलना कि जहर बन घुले। वाणी हमारी बाण न बने, वाणी हमारी बाँस की लाठी न बने, वाणी हमारी वीणा बनकर गुंजायमान हो। उसी बाँस से लाठी बनाते हो, उसी बाँस से बाँसुरी बनती है ना? वाणी में तुम्हारी बाँसुरी बनकर संगीत के स्वर निकले, वाणी तुम्हारी लाठी बनकर किसी की पीठ न तोड़े। वाणी को बाँस की लाठी मत बनाना, वाणी को ज्ञानी। बाँस की बाँसुरी बनाना। **'हा दुट्ठ भासियं'** '**अन्तोअन्तो'** मैं अंतरंग–अंतरंग में झुलस रहा हूँ पश्चात्ताप से। हे स्वामी! मेरे दुष्कृत मिथ्या हो। **'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।'** हे प्रभो! मैंने दुष्ट बोला हो, मैंने दुष्ट किया हो, मैंने दुष्ट भाषण किया हो, वे मेरे सारे दोष मिथ्या हों। तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चैत्यभक्ति में भगवान् गौतम स्वामी ने भगवान् की वाणी को 'महानद' की उपमा दी। 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' क्यों? मैंने दुष्ट किया हो, दुष्ट बोला हो, दुष्ट चिंतन किया हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। सामायिक देशना 93

प्रतिक्रमण के विषय में आचार्य श्री ने वहुत ही सुन्दर उदाहरण देकर सम्बोधन दिया है –

भैया! अपन लोग घर में नाली भी तो बनाते हैं। कितनी सुन्दर होती है जब बनकर तैयार होती है और फिर सप्ताह में एक बार साफ भी करता है। जब नाली बनाई जाती है, तब कोई गंदगी नहीं होती है। बनने के उपरांत गंदगी हो ही जाती है, तो साफ भी तो करना करना पड़ती है। कोई भी जीव व्रत धारण करता है, तब कोई अशुद्धि नहीं होती है। लेकिन फिर भी दीष लग ही जाते हैं। यदि नाली को साफ नहीं करेगा तो घर कीचड़ से भर जाएगा। ऐसे ही यदि प्रतिक्रमण नहीं करेगा तो तेरा चारित्र

का घर कीचड़ से भर जाएगा। इसलिए प्रत्येक श्रावक के, योगी के तीन बार प्रतिक्रमण में कमी नहीं आनी चाहिए। यदि प्रमाद है, जागृति नहीं है, तो पल–पल में दोष है। श्रुतानुष्ठान में सबसे बड़ा है, महापाप है, तो वह प्रमाद है और प्रमाद सबसे बड़ी हिंसा है।

हे जिनेन्द्र भगवान्। मैंने उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का प्रमाद से जो अतिक्रमणतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।